# गौरव-शिखर

कनिष्क प्रकाशन

# गौरव-शिखर

डॉ० नत्थन सिंह

## समर्पण

उन सभी को,
जिन्होने
राष्ट्र की स्वाधीनता
और
समृद्धि मे
योगदान किया है।

# अपनी ओर से

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् होती है। इन पर बलिदान होने वालो की कब्रा पर मेले लगते ह, इसके लिए कष्ट सहन वालो के सिरो पर फूलो की वर्षा होती है, इतिहास के पन्नो पर वे अमर रहते है और अपनी कहानी से देशवासियो को हमेशा प्रेरणा देते रहते हैं। ऐसे लोग किसी एक जाति, एक काल तथा एक धर्म के न रहकर समस्त लोक एव काल के गौरव शिखर बन जाते हैं।

ऐसे व्यक्तियो के भले-बुरे सफल-असफल और लोकहित एव विरोधी कार्यों से हमारा मार्ग प्रशस्त होता ह। अच्छे तथा हितकर कार्यों स हम प्रेरणा मिलती ह।

और काल तथा परिस्थिति की सही समझ क अभाव म, उनके द्वारा हुए लोक विरोधी कार्यो स हम भविष्य के प्रति सावधान होते है, उन भूलो को दुहरान स बच जाते है, जिनसे लोक तथा राष्ट्र का अहित हो सकता है। इस प्रकार, उनके कार्य हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ बन जाते है, हम बिना ठोकरे खाए आगे बढ जाते हैं, राष्ट्र तथा समाज को समृद्धि की ओर ले जाने वाले सही मार्ग का सधान पा लेते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि एसे बलिदानी वीरो के जीवन इतिहास तथा समाज एव राष्ट्र हित के कार्यों को हमेशा याद रखा जाए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस पुस्तक की योजना की गई है।

भारत की सभ्यता, सस्कृति और स्वाधीनता को खतरा अनेक विदेशी आक्रान्ताओ स रहा हे। इनम हूण शक तुर्क, अफगान और अग्रेजो की गणना होती है। इनम से किसी न तलवार स और किसी न प्यार स हमारी सस्कृति एव स्वाधीनता को समूल नष्ट करन क प्रयास किए ह। इस पुस्तक म, ऐसे छ व्यक्तियो के कार्यों पर प्रकाश डालन का प्रयास किया गया है जो इस देश तथा यहा की स्वाधीनता तथा समृद्धि के लिए बलिदान हुए हैं अथवा निरतर सघर्ष मे लगे रहे हैं।

औरगजेब क भ्रष्ट तथा जन विरोधी शासन के विरुद्ध ब्रज क्षेत्र मे क्रान्ति का झण्डा उठाने वाले एक किसान राजाराम थे, अफगान आक्रान्ताओ का मुह मोडने

में शेरे पंजाब रणजीतसिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था, 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन में बहादुर शाह जफर की रक्षा करने तथा दिल्ली पर अंग्रेजों की बढ़त रोकने का ऐतिहासिक कार्य नाहरसिंह ने किया था, भारत के क्रांतिकारी आन्दोलन को एक दर्शन का रूप देने और भारत के लिए समृद्ध लोकतंत्र का नक्शा पेश करने वाले सरदार भगतसिंह थे, देशी-सामंतों और अंग्रेजी साम्राज्य की जंजीरों में जकड़ी राजस्थान की धरती को स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय आंदोलन की राह पर ले जाने वाले स्वामी केशवानन्द थे और भारत की स्वाधीनता के फल को धूल में मिला देने की चालों को हथियारों के बल पर विफल करने के लिए कोशिशों में संलग्न मेजर जयपाल थे।

ये सभी बलिदानी वीर साधारण किसानों के घरों में पैदा हुए थे और अपने अदम्य साहस, अपरिमेय देशभक्ति एवं असीम लोक हित के बल पर भारत के लिए गौरव शिखर बन गए हैं। इनकी गाथाओं को पढ़कर, भारत के भावी नागरिकों को देशभक्ति, लोक हित, राष्ट्रीय एकता और चरित्रगत उदात्तता की प्रेरणा मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

बड़ौत (मेरठ) — नत्थनसिंह
जून, 1987

# विषय-सूची

# सिनासिनी का क्रान्तिकारी किसान राजाराम

बादशाह अकबर ने इस देश को सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक एकता के धागों में पिरोया था। उसका बाबा बाबर बाहर से इस देश में आया था, लेकिन यहीं का होकर रह गया था। उसका बेटा हुमायूं तथा नाती जलालुद्दीन अकबर इस देश को अपना देश मानकर इसको सजाने, सवारने तथा समृद्ध बनाने पर लग रहे थे। यहां की जातियां तथा धर्मों को कुचलने अथवा समाप्त करने में उनकी रुचि नहीं थी। उन्होंने जातीय धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता का अद्भुत परिचय दिया था। जहांगीर तथा शाहजहां तक ने भी एक सीमा तक, इस नीति का निवाह किया था।

मंदिरों में शंख ध्वनि और मस्जिदों में अजां एक साथ होती थी। ईद और होली दोनों (हिन्दू तथा मुसलमान) एक साथ मनाते थे। रहीम और रसखान कृष्णभक्ति में झूमते थे। दोनों धर्मों के संत तथा सूफियों को, दोनों धर्मों के लोग अपने संत तथा सूफी मानकर, पूजते थे। कहीं कोई भेद भाव नहीं था। गंगा-जमुनी संस्कृति का यह अद्भुत उदाहरण था। जिस तरह एक ओर से गंगा और दूसरी ओर से यमुना आकर प्रयाग में मिल जाती है पतित पावन तीर्थराज का निर्माण करती है उसी तरह हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियां मिलकर कृष्णभक्ति की धारा में बह रही थी। ब्रज की गोप संस्कृति ने जाति धर्म तथा संस्कृति का भेद मिटाकर एक मानवतावादी संस्कृति की धारा बहा दी थी।

औरंगजेब ने इस एकता को भंग कर दिया। राज्य पाने के लिए उसने पिता शाहजहां को कैद किया, कुछ भाइयों को जहर खिला दिया और गद्दी को हथियाने के बाद दारा तथा शिकोह का कत्ल करा दिया। अपनी स्वार्थपरता और राजनीतिक नृशंसता पर परदा डालने के लिए खुद को इस्लाम का अनुयायी बताया और उदारतावादी शाहजहां तथा दारा को काफिर। इस प्रकार उसने सांस्कृतिक एकता, सामाजिक सद्भावना और मानवधर्मिता का नाश कर दिया और दोनों जातियों को आमने सामने खड़ा कर दिया था। शाही शान और अधिकार के घमण्ड में वह भूल गया कि कोई कौम, धर्म एवं संस्कृति मिटाने से

मिटती नहीं है, वह जब एक ताकत बनकर उभरती है तो मिटाने वाले का ही मिटा देती है। औरंगजेब ने भारत से उसकी प्राचीन संस्कृति को इस्लामिक कट्टरता तथा तलवार के जोर से मिटाना चाहा था, अत वह न सिर्फ खुद मिट गया वरन् मुगल साम्राज्य के विनाश के बीज भी बो गया। जो कार्य महाराष्ट्र में शिवाजी ने किया था, वही कार्य ब्रज क्षेत्र में सिनसिनी के किसान राजाराम ने कर दिखाया। दोनों में सिर्फ अंतर एक है। शिवाजी को पिता की सेना प्रशिक्षित सिपाही और मराठा ताकत विरासत में मिली थी। राजाराम के पास किसानों के सहयोग और आम जनता की सहानुभूति के अलावा कुछ नहीं था। उसको सैनिक तो जनता से मिले थे लेकिन हथियार और सम्पत्ति मुगलों से ही छीननी पड़ी थी।

ब्रज क्षेत्र की समस्त जनता औरंगजेब के कट्टर शासन के खिलाफ विद्रोह करने पर उतारू थी उसको नेता के रूप में मिल गया गांव सिनसिनी का एक जाट किसान राजाराम। क्षेत्र की सातों कौमों (ब्राह्मण, वैश्य, जाट, धाबी, गूजर, अहीर और हरिजन जातियों) के चौधरियों ने, सिनसिना देव के मंदिर पर, राजाराम के सिर पर पगड़ी बांधकर उसको अपना नेता मान लिया और वह मुगल-शासन से टक्कर लेने के लिए तैयार हो गया।

सवाल यह है कि ब्रज क्षेत्र की जनता, किसानों के नेतृत्व में, मुगल शासन को चुनौती देने के लिए क्यों खड़ी हो गयी थी? कोई राज्य, जब जनता के जान माल और आदर की रखवाली न करके उसको लूटने, बेइज्जत करने, उसकी बहू-बेटियों को छीनने उसके रीति रिवाज तथा धार्मिक परम्पराओं को ध्वस्त करके, तलवार के बल पर धर्म बदलने के लिए मजबूर कर देता है तब स्वाभिमान और लोकतंत्र में आस्था रखने वाली जनता विद्रोह पर उतारू हो जाती है। औरंगजेब का मुगल शासन लोक-प्रिय शासन न रहकर जन विरोधी राज्य बन गया था। उसके द्वारा नियुक्त मथुरा के फौजदार अब्दुल नबी ने मथुरा के ब्राह्मणों को मृतक मुस्लिमों के लिए कब्र खोदने का विवश किया था, इलाके की सुंदर स्त्रियों को उठाना प्रारंभ कर दिया था कटरा केशवदेव के मंदिर से दारा द्वारा दिया गया पारदर्शी पत्थर निकलवाकर मंदिर ध्वस्त करा दिया था, किसानों से बार-बार और बलपूर्वक लगान वसूल कराना प्रारम्भ करा दिया था। यही कारण है कि जनता के मन में विद्रोह पनप रहा था। उसको बाहर निकलने के लिए अवसर और साधन की जरूरत थी, वह मिला राजाराम के रूप में।

मुगल उनके अनुयायी इतिहासकार ब्रज-क्षेत्र की जनता को बुरा लगानदाता (बैड टैक्स पेयर) कहते हैं और मुगल राज्य की भूमि व्यवस्था पद्धति की तारीफ करते नहीं थकते। इसलिए लगान-वसूली के लिए, किसानों पर की गई प्रत्येक ज्यादती को न्यायोचित ठहराते हैं। राजाराम के विषय में कुछ कहने से पहले,

थोडा-सा प्रकाश मुगल शासन की भूमि-व्यवस्था पर डालना जरूरी है।

उन दिनों, भारत में जमीन अधिक थी और उस पर खेती करने वाले कम थे। भूमि का मालिक राज्य था। उसने अपने और किसानों के बीच जमीन का मालिक एक ऐसा वर्ग बना लिया था जिसमें हिन्दू, मुस्लिम राजे, नवाब, जमींदार और जागीरदार थे। अकबर के समय में ऐसे जागीरदारों की संख्या 1 658 थी, जहांगीर के समय में, 2,069 हो गई थी। शाहजहां के काल में वह 8,000 हुई और औरंगजेब के काल में 11,456 हो गई। इनमें से अधिकांश जागीरदार अब्दुल नबी के रास्ते पर चलने वाले थे, जो किसानों को किसी प्रकार की सुविधा प्रदान न करके, उनको हर तरह परेशान करते थे। ऐसे जागीरदारों को लगान न देकर उनके खिलाफ विद्रोह कर देना ब्रज की जनता के लिए, कृष्ण तथा बलराम की क्रान्तिकारी परंपरा का पालन करना था। सबसे पहले यह काम किया था नन्दराम नामक किसान ने। उसके नेतृत्व में किसानों ने लगान देना बंद कर दिया था, किन्तु सन 1660 में औरंगजेब ने सेना के बल पर उस विद्रोह को दबा दिया था। इसके सिर्फ नौ वर्ष बाद, जिला मथुरा के किसानों ने तिलपत गांव के किसान गोकुला के नेतृत्व में, औरंगजेब के शासन को चुनौती दी। बीस हजार किसान मारे गए। गांवों की महिलाओं ने कुएं तथा तालाबों में कूदकर मौत को गले लगा लिया पर मुगल-सेना के हाथों बेइज्जती नहीं सही। औरंगजेब स्वयं दिल्ली से चलकर वहां गया था और गोकुला विरोधी अभियान का संचालन किया। गोकुला और उसके अनुयायी किसान मुगल फौज के सामने हार गए थे। लेकिन उनकी भस्म ने एक ऐसे व्यक्ति को जन्म दिया जो मुगल-साम्राज्य के स्तम्भों को उखाड़ कर एक किसान राज्य की स्थापना करने में समर्थ हुआ था। उसने सिद्ध कर दिया था कि बड़ी से बड़ी जन विरोधी ताकत को भूमिसात किया जा सकता है जनता के दुश्मन को धूल चटाई जा सकती है और उसके विनाश से एक नयी ताकत को उभारा जा सकता है।

औरंगजेब के भ्रष्ट मुगल शासन के विरोध में राजाराम का उदय हुआ। उसने वह गलती नहीं दुहराई जो नंदराम तथा गोकुला ने की थी। वह गलती थी, मुगल-फौज के सामने जमकर लड़ाई लड़ना। सबसे पहला काम उसने यह किया कि जिला भरतपुर (राजस्थान) के वर्तमान ग्राम सिनसिनी, थून तथा सोगर आदि में घने जंगलों के बीच अपनी गढ़ियां बनवायीं, उनमें किसानों को सैनिक शिक्षा दिलाई, उनको अनुशासन सिखाया और गुरिल्ला-युद्ध के लिए उनको प्रशिक्षित किया। इसमें कोई शक नहीं कि समूचा क्षेत्र जाट बहुल था अतः उसके सैनिकों में अधिकता जाटों की थी पर अन्य कौमों का अभाव न था। सैनिक कार्यवाही के लिए जाट सर्वाधिक उपयुक्त थे और दूसरे प्रकार के कामों के लिए अन्य लोग। सातों जातियों के सहयोग से राजाराम आगे बढ़ा था।

उसने सबसे पहले आगरा के गवर्नर हाजी मुहम्मद शफीखान को आगरा से बाहर न निकलने के लिए मजबूर कर दिया। आगरा से बाहर जाने वाली सडको की नाकेबंदी कर दी और इसके बाद सिकंदरा (आगरा) के फौजदार मीर अब्दुल फजल पर आक्रमण करके उनके हथियार तथा खजाने को अपने काबू में कर लिया और रात के अंधेरे मे ही अपने साथियो के साथ जंगलो मे छिप गया। इस सफलता से उनके इरादे तथा साहस बढ़ गए।

राजाराम की दूसरी जीत अधिक उल्लेखनीय थी। इमाम कुली आगरखा तूरानी नामक मशहूर मुगल सेनापति, सम्राट औरंगजेब की सहायता के लिए दक्षिण की ओर जा रहा था। उसके साथ बडी सेना, खजाना तथा हथियार थे। धौलपुर के पास वह ठहरा हुआ था। उसके अत्याचारों से इलाके की जनता कराह रही थी। राजाराम ने रात के अंधेरे मे उसके पडाव पर हमला कर दिया। आनन फानन मे राजाराम के सैनिक उसके हथियारो तथा खजाने पर टूट पडे और इमाम कुली आगरखा तूरानी उसके दामाद तथा अस्सी अन्यो को मौत के घाट उतारकर भाग गए। इस तरह, वह धीरे धीरे मुगल शासन की नाक नीची करने लगा था।

राजाराम की गतिविधि को रोकने के लिए सम्राट औरंगजेब ने मई सन् 1686 मे खाने जहा कोकलतास जफरजग को नियुक्त किया था। जफरजंग अपनी सेना के साथ यमुना के किनारे ठहरा हुआ था कि राजाराम ने रात के अंधेरे म, हमला करके उसको भी धूल चटा दी। मुगल सिपाही जब तक तैयार होते राजाराम और उसके सैनिक अपना काम करके भाग लेते थे। जफरजंग की विफलता से सम्राट चिंतित हुआ था। उसने अपने बेटे आजम को राजाराम के दमन की आज्ञा दी थी। वह बुरहानपुर तक पहुंच ही पाया था कि उसको वापस बुला लिया गया। इसके बाद, उसके सत्रह वर्षीय पुत्र बेदार बख्त को राजाराम के दमन हेतु भेजा गया।

बेदार बख्त अभी तक आगरा पहुच भी नही पाया था कि राजाराम ने सन् 1688 के प्रारंभ म, महाबत खा की पदवी धारी मीर इब्राहिम हैदराबादी का आकस्मिक हमले मे छक्का दिया। महाबत खा पंजाब सूबा की गवर्नरी पर जा रहा था कि अपना सारा साज समान खो बैठा।

मुगल सेनापतियो की निरतर पराजयो का कारण एक ओर तो उनकी विलासिता क्रूरता और नृशंस संहार था और दूसरी ओर जनता का आक्रोश। जनता की सहानुभूति तथा सहयोग राजाराम के साथ था। वह उसकी विजय और मुगलो की हार देखना चाहती थी इसलिए कि वह स्वाभिमान तथा स्वाधीनता के साथ जीना चाहती थी और राजाराम उनकी स्वाधीनता तथा सम्मान का प्रतीक बन गया था। उसके किसी सैनिक ने मुगल सैनिक तथा

सेनापति के अलावा कभी किसी को न तंग किया और न लूटा। इस प्रकार राजाराम, एक सीमा तक, ब्रज-क्षेत्र में वही वातावरण पैदा करने में समर्थ हो सका था, जो शिवाजी ने महाराष्ट्र में पैदा कर दिया था। उसने, इस क्षेत्र के उन तमाम मुल्ला, सामंत, गद्दीदार नवाबों को मार डाला जो बहुत जटियों को छीनते थे अथवा छीनने के षड्यंत्रों में शामिल होते थे। उसने अऊ के किलेदार लालबेग को मार डाला, जो इलाके में बेईमानी तथा मक्कारी के लिए विख्यात था।

राजाराम की लड़ाई न तो इस्लाम के साथ थी और न इस्लाम के सच्चे अनुयायियों के साथ। उसका विरोध उन लोगों के साथ था, जो एक धर्म के ढोंग की रक्षा के लिए दूसरे धर्म को मिटाने पर तुल जाते हैं, अथवा इंसान इंसान के बीच धर्म और जाति की खाई खोदकर, इंसान के लिए घृणा पैदा कराते हैं।

बेदार बख्त के आगरा पहुंचने से पहले राजाराम अपनी स्थिति मजबूत कर लेना चाहता था। इसलिए उसने अपने सैनिक तथा सामग्री को मौके के लिए तैयार कर लिया था और दूसरी ओर शेखावाटी के शेखावत तथा चौहान राजपूतों में जमीन के बटवारे से संबंधित झगड़े में मध्यस्थता करके अपना पक्ष मजबूत बनाने का प्रयास कर रहा था। लेकिन दोनों जातियों का पारस्परिक संघर्ष रोका न जा सका। शेखावतों का मुगल तथा मेवात का नवाब समझौता नहीं करने दे रहे थे। उनके हित, दोनों जातियों को लड़ाये रखने में सुरक्षित थे, अतः मेवात के नवाब ने शेखावतों को सैनिक सहायता दी और उनको चौहानों से लड़ने के लिए मजबूर कर दिया। विवश होकर चौहानों ने राजाराम से सहायता मांगी। राजाराम ने उनको सैनिक सहायता दी और मेवात के नवाब तथा शेखावतों की सम्मिलित सेना को हरा दिया। विजय चौहानों के हाथ लगी, किंतु विजय की खुशियां अधूरी रह गई।

## अन्तिम यात्रा के लिए प्रस्थान

शेखावाटी में चौहान तथा शेखावत राजपूतों के संघर्ष में चौहानों की जीत के बाद, विजयी के रूप में, राजाराम अपने सैनिकों तथा लड़ाई के क्षेत्र का निरीक्षण कर रहा था। वह घोड़े पर सवार था। अंधेरे का लाभ उठाकर झाड़ी में छिपे किसी सिपाही ने उस पर गोली दाग दी। गोली लगने से उनका स्वर्गवास हो गया। इस तरह उनकी जीत की खुशियां अधूरी रह गई। साथ ही अत्याचारी मुगल शासन के विरुद्ध शेखावाटी तथा ब्रज-क्षेत्र के सम्मिलित तथा संगठित विरोध की कल्पना भी अधूरी रह गई। लेकिन उसने मुगल शासकों तथा सेनापतियों की जनशक्ति के हाथों हार की जो परंपरा प्रारम्भ की थी वह आगे बढ़ती रही। वह रुकी नहीं। सिनसिनी मथुरा आगरा के बहादुर किसान राजाराम के ही

घाटदानी चूरामन के नेतृत्व में मुगल शासन को तब तक चुनौती देते रहे जब तक कि उसने उनकी शक्ति को स्वीकार नहीं कर लिया और चूरामन ने समस्त इलाके में भ्रष्ट शासकों, दलालों, बलात्कारी नवाबों, हिन्दू नारियों की लूट करने वाले फकीरों और तकीयों पर रहने वाले काजियों का इलाके से प्रभाव खत्म नहीं कर दिया। डीग के पास अऊ नामक स्थान के किलेदार लालबेग को मारकर राजाराम ने इलाके में स्वाधीनता तथा शान्ति का वातावरण पैदा कर दिया था।

यह साम्राज्य विरोधी एवं लोकतन्त्रमुखी क्रान्ति का अग्रदूत बनकर उत्पन्न हुआ था। उसने शताब्दियों से दासता तथा शोषण से उत्पीड़ित जनता को मुक्ति एवं स्वाधीनता की राह दिखाई थी। यथार्थ में यह हमारे राष्ट्र का एक गौरव है, हमारी गंगा जमुनी संस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक है और हमारे इतिहास का एक गौरव शिखर, जिसको ढकने तथा अंधकार में रखने के अनेक प्रयास किए गए हैं? लेकिन क्या यह अंधकार में रह पाया है। हमारे सांस्कृतिक सूर्य की पहली किरण तो उसी पर पड़ती है।

# शेरे पंजाब, महाराजा रणजीतसिंह

महाराज रणजीत सिंह भारत की एक ऐसी सपूत संतान थे, जिसने कभी चाणक्य, चन्द्रगुप्त तथा महाराजा सूरजमल की तरह स्वाधीन तथा शक्तिशाली भारत बनाने का स्वप्न देखा था और अपनी सारी शक्ति इस स्वप्न को पूरा करने पर लगाई थी। उन पर भारत का प्रत्येक आदमी गर्व कर सकता है। विशेषत आज के युग में, जबकि पंजाब आतंकवाद की ताकतों से पामाल है और देश संकीर्णतावादी मनोवृत्तियों से आक्रान्त है। यदि आज रणजीतसिंह होते तो निश्चय ही देश को शक्तिशाली एवं संगठित बनाने में महान् योग देते।

## जन्म, शिक्षा तथा परिवार

महाराज रणजीत सिंह का जन्म सन् 1780 में हुआ था। इनके पिता का नाम महासिंह और माता का नाम राजकौर था। महासिंह जाट सिखों की सुकरचकिया मिसल के एक बहादुर आदमी थे। यह मिसल पंजाब की सुकरचकिया नामक गाव के लोगों ने बनायी थी। सरदार चरतसिंह इस मिसल के नेता थे। सुकरचकिया अथवा सकरचक्र नामक गाव अमृतसर के पास है। सरदार चरतसिंह ने थोड़े से ही समय में इतनी ताकत पैदा कर ली थी कि वह पंजाब के जाट सिखों की दूसरी ग्यारह मिसलों के संचालकों में प्रमुख माने जाने लगे थे। सरदार चरतसिंह के पास हर समय ढाई-तीन हजार सैनिक लड़ाई तथा अपनी रक्षा करने के लिए हर समय तैयार रहते थे।

रणजीतसिंह की मा राजकौर (राजकुवारि) जींद के राजा गजपतसिंह की बेटी थी। जिस समय इनके पिता महासिंह ना-बालिग थे उस समय उनकी माता देशां राज की व्यवस्था करती थी। वह बहादुर और कुशल प्रशासक थी। रणजीतसिंह को ये गुण विरासत में अपनी दादी तथा पूर्वजों से मिले थे। वह पढ़े लिखे नही थे किन्तु राजनीतिक सूझबूझ और राज की व्यवस्था करने की कला में वह लाजवाब थे।

महाराज रणजीतसिंह के वंश वृक्ष के बारे में इतिहासकारों की मान्यता है कि महाराज शालवाहन (शालिवाहन) इनके आदि पूर्वज थे। यह स्यालकोट के

राजा थे। इनके बाद जोधड़ भी इस का राजा हुआ। इसका पुत्र नधवा था और इसका बेटा महस्स था जो सांसी का पिता था। ये मानव सांसी कहलाता। इनका पुत्र गयालाल था और इसका पोता धर्मी। धर्मी का बेटा उग्यार्थ था उग्यार्थ कहलाता और इसका जारी। जारी के बाद क्रमशः उदय, चन्द्र, बीन, धन्ना, नागमल, भानु जाधानन्द बोह या घटटू, बामा, प्यारा, बुड्ढा, बिद्धा आदि कई राजा इस परिवार में उत्पन्न हुए। बिद्धा या बिधासिंह के पुत्र का नाम नवलसिंह था। यही सिख जाट थे सुकरचकिया मिसल के सरदार थे। इन्हीं का बेटा महासिंह था। महासिंह को ही पंजाब के शेर रणजीतसिंह का पिता होने का यश प्राप्त है।

महाराज के एक पूर्वज कालूजी थे जो 1746 में सांसी नामक स्थान को छोड़कर वजीराबाद के पास सुकर चाक गांव में आ बसे थे। सन् 1488 में उनका स्वर्गवास हो गया था। इनके बाद जादूवंशी ने सांसी जाटों की एक दूसरी गद्दी करके राज्य स्थापित करने की योजना बनाई। लूट मार भी इस योजना का एक अंग था। सन् 1515 में एक धावे में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इसका पुत्र कालिय सांसी जाटों का सरदार बन गया। उसने पर्याप्त सम्पत्ति एकत्र की। 1549 में उसका स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् इसका बेटा बिद्दू सुकर गांव छोड़कर गुजरान वाला के पास बसे गांव सुकरचकिया में आकर रहने लगा। वह शांत स्वभाव का व्यक्ति था, उसने शान्ति का जीवन व्यतीत किया। सन् 1578 में उसका स्वर्गवास हो गया। इसके दो बेटे थे—पहला रामदास और दूसरा प्रेमू। पहला बेटा शांत स्वभाव का था। उसने व्यापार करना शुरू किया। उसके दो बेटे तलू और नींदू युवावस्था में ही स्वर्ग सिधार गए और तीसरे बेटे तख्तमल ने बाप का पेशा व्यापार संभाल लिया। सन् 1620 में रामदास भी स्वर्ग सिधार गए। इनके दो बेटे थे—एक वायु दूसरा बारा। पहला साहसिकों के दल में शामिल हो गया और दूसरा बारा गुजरान वाला के एक भक्त का शिष्य हो गया। अंतिम समय में उसने अपने बेटे बुद्धा को सिख धर्म में शामिल होने का आदेश दिया और वह सन् 1762 में सिख धर्म में दीक्षित हो गया। वह साहसी वीर तथा पराक्रमी था। सिखों के एक वर्ग ने उसको अपना नेता मान लिया। वह भी साहसिक कार्यों में उलझ गया। उसके पास देसू नामक एक शानदार घोड़ी थी जिसके द्वारा उसने पचासों बार झेलम चेनाब तथा रावी नदियों को पार किया। सन 1716 में उसकी मृत्यु हुई। उनकी पत्नी सत्यवती ने ऐसे बहादुर पति के वियोग में जीवित न रहने की इच्छा से छाती में तलवार भोंककर प्राणों का अंत कर दिया था। बोधसिंह तथा चन्दासिंह नामक उनके दो पुत्र थे। दोनों ही पिता के समान वीर थे। उन्होंने सुकरचकिया गांव को फिर से व्यवस्थित किया। अपने भाइयों को एकत्र करके

उसने एक टुकडी खडी कर ली और आसपास के गावो को अधिकार म ले लिया और रावलपिंडी से सतलज तक अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। मजीठ के सासी जाट गुलाबसिंह की बेटी से उनका विवाह हुआ था।

बोधसिंह महाराज सूरजमल का समकालीन था। उसने नवाब कपूरसिंह के साथ मिलकर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण का प्रतिरोध किया था। सन् 1848 म अफगानो के साथ लडते हुए गोली लग जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। उस समय उनका पुत्र चरतसिंह सिफ सात वष का बालक था। उसने भी सन् 1754 के आसपास सासी जाटो की टुकडी बनाकर अफगान आक्रमणकारियो का सामान छीनना प्रारम्भ कर दिया। अब्दाली के किलेदारो पर उसका इतना डर छा गया कि बटाली के सरदार मुहम्मद यार खा ने अपने राज्य का प्रबध चरतसिंह के हाथो मे सौंप दिया और स्वय पन्द्रह सवारो के साथ उनकी टुकडी म शामिल हो गया। इस समय चरतसिंह के पास सिफ 150 घुडसवार सिपाही थे। इनके बल पर ही उसने गुजरान वाला के किले पर अधिकार कर लिया था। वहीं अमीरसिंह नामक सासी जाट की कन्या के साथ विवाह कर लिया। अमीरसिंह भी एक वीर सैनिक था। दोनो ने मिलकर वहा के मुगल सरदार का सफाया कर दिया। लाहौर के मुगल शासक ने इन दोनो की बढती ताकत को कुचलने के लिए इन पर हमला कर दिया किन्तु वह भी इनके सामने ठहर न सका। वह भाग खडा हुआ। उसका बहुत सा सामान इन दोनो के हाथ लगा। इस प्रकार अमीरसिंह और चरतसिंह के नेतत्व मे पजाब के जाट भी मुगल तथा अफगानो के शोषण तथा गुलामी से पजाब की जनता को उसी प्रकार छुटकारा दिला रहे थे, जिस प्रकार गजी चूरामन तथा राजाराम ने भरतपुर के क्षेत्र म दिलाया था।

पानीपत की तीसरी लडाई म जिस प्रकार मराठा और मुगल ताकतो को धराशायी करके अहमदशाह अब्दाली महाराज सूरजमल को मिटाने पर तुला था और महाराज उसे अपनी कूटनीति से उलझाए हुए थे, उसी तरह पजाब म महाराज रणजीतसिंह के बाबा चरतसिंह, जस्सासिंह तथा भगी मिसल के जाट सिख सरदारो को अपनी ओर करके, पानीपत से लौटते हुए अब्दाली को हार का पाठ पढाने की योजना मे लगे थे। उन्होंने सबसे पहले अपने बाल बच्चो तथा माल असबाब को जम्मू भेज दिया। आसपास के अफगान किलेदारो को पीट पाटकर कमजोर बना दिया ताकि अब्दाली से लोहा लेते समय उनके विरुद्ध अब्दाली की सहायता न कर सके। इस प्रकार पूरी तैयारी के साथ उन्होंने अब्दाली की फौज पर हमला करके उसको परेशान करना प्रारम्भ कर दिया था। जिस समय अब्दाली की फौज व्यास नदी को पार कर रही थी उस समय चरतसिंह के नेतृत्व मे पजाबी जाटो ने इतनी ताकत और चतुराई के साथ उस

पर हमला किया था कि अफगानों के पैर उखड़ गए। हिन्दुस्तानी जनता के लोगों को गाजर मूली की तरह काटकर फेंक देने वाले, अफगान सिपाही सारी हेकड़ी भूल जान बचाकर भागने लगे थे और हजारों जाटों की तलवारों के शिकार हुए। जान बचाकर लाहौर पहुंचने वाला अब्दाली जाट सिखों को पाठ पढ़ाने के लिए मन मसोसकर रह गया था।

यहां सिर्फ विचार करने की बात एक है कि ब्रज की भूमि पर वह सूरजमल के सिपाहियों से पिटा जो उसकी फौज पर पीछे से हमला करते थे और जब उसकी सेना उनका पीछा करती थी तो दूसरी दिशा की ओर से सूरजमल के सिपाही अफगान सैनिकों पर हमला बोल देते थे और इसी तरह वे उसको पीटते रहे और अंत में उसको लौटने के लिए मजबूर कर दिया। यही काम पंजाब के जाटों ने किया और अब्दाली की दिल्ली विजय की खुशी को खत्म कर दिया तथा उससे दिल्ली की लूट के माल को छीन लिया। यदि महाराज सूरजमल का सुझाव मानकर सदाशिव राव भाऊ बीबी बच्चों को युद्ध के मैदान में न ले गया होता और उनको महाराज सूरजमल द्वारा प्रस्तावित भरतपुर राज्य के किसी मजबूत किले में सुरक्षित रख दिया होता तो उसको हार का मुंह न देखना पड़ता। अफसोस इस बात का है कि सूरजमल तथा चरतसिंह जैसे दो किसानों ने जिस कुशल रणनीति को अपनाने की बात सोच ली वह सदाशिवराव भाऊ होल्कर तथा सिंधिया जैसे कुशल सेनापतियों के दिमाग में क्यों नहीं आई और जब महाराज सूरजमल ने उनको वह रणनीति बताई तो उस समय उसकी उस पर आंखें क्यों नहीं खुली? इसको देश का दुर्भाग्य ही माना जायेगा।

काबुल पहुंचकर अब्दाली ने, पंजाब के जाटों को पाठ पढ़ाने के लिए नुरुद्दीन नामक एक सरदार को बड़ी फौज के साथ भेजा था। उसने यहां की जनता को लूटना प्रारम्भ कर दिया। जब चरतसिंह को इस बात की खबर लगी तो नुरुद्दीन का मुकाबला करने के लिए पहुंचे। उसको भयंकर लड़ाई में हराया। वह भागकर स्यालकोट के किले में जा छिपा तो चरतसिंह ने किले को घेर लिया। नुरुद्दीन रात के समय छिपकर जम्मू की ओर भाग गया। उसके सैनिक सामान को अधिकार में लेने के बाद चरतसिंह ने चकवान और पिण्डदादन खां को फतह किया। बाद साहबघा तथा राजा काकोट नामक स्थानों को अधिकार में लिया। वजीराबाद तथा अहमदाबाद का वह पहले ही अपने काबू में कर चुके थे। नुरुद्दीन की हार का बदला लेने के लिए लाहौर का सूबेदार ख्वाजा हमीद फौज लेकर सिक्खों के विरुद्ध चढ़ा लेकिन चरतसिंह ने उसको भी ठीक किया। इसका नतीजा यह हुआ कि जनता को परेशान करने वाले अफगान तथा मुगल नागर चरतसिंह से घबराने लगे। वह पंजाब में आजादी और सम्मान का प्रतीक बनकर उभरने लग गया।

जम्मू के राजा रणजीत देव से उसके बड़े बेटे को राज दिलाने के लिए हुई लड़ाई में अपनी बन्दूक की नली फट जाने से चरतसिंह घायल हुए और स्वर्ग सिधार गए। उस समय महासिंह की अवस्था केवल दस वर्ष की थी।

सन् 1774 में चरतसिंह का स्वर्गवास हुआ था। इसके एक वर्ष बाद उनके पुत्र महासिंह का जींद के राजा गजपतसिंह की कन्या राजकुंवरि अथवा राजकौर के साथ विवाह हुआ। महासिंह की नाबालिगी में राज का काम उनकी मां देसा चलाती थी। वह वीर एवं साहसी महिला थी। उसने सरदार कन्हैया तथा बारह वर्षीय महासिंह की सहायता से रसूलनगर के मुस्लिम शासक पीर मुहम्मद को ठिकाने लगाया और उससे वह तोप छीनली जिसको वह की आनाकानी वह कर रहा था। इस तोप को झण्डासिंह नामक एक जाट सरदार ने अब्दाली से छीनकर अमानत के तौर पर पीर मुहम्मद के पास रख दिया था। महासिंह ने रसूलपुर का नाम रामनगर तथा अलीपुर का अकालगढ रख दिया। साथ ही, पीर मुहम्मद के राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। इस घटना से एक ओर महासिंह को योद्धा के रूप में ख्याति मिली, दूसरी ओर दो वर्ष बाद पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। यही पुत्र आगे चलकर रणजीतसिंह के नाम से विख्यात हुआ। जिसको स्वतंत्र और शक्तिशाली पंजाब बनाने का श्रेय है।

बचपन में बालक रणजीतसिंह के भयंकर चेचक निकली, जिसमें उनकी एक आंख मारी गई और मुंह पर दाग बन गए, किन्तु कालान्तर में उनकी शारीरिक कुरूपता को उनके वीरता तथा देश भक्तिपूर्ण कामों ने धो दिया। वह जाट जाति, सिख धर्म, पंजाब और अन्ततः देश के लिए गौरव के प्रतीक बन गए।

उन दिनों मुलतान और बहावलपुर पर भंगी-मिसल के सरदारों का अधिकार था, तैमूरशाह के सामने वे नहीं ठहर पाए। उनकी हार का कारण वीरता अथवा रणकौशल का अभाव नहीं, वरन् आपसी फूट थी। वे एकजुट होकर तमूरशाह का सामना नहीं कर पाए थे। इसलिए महासिंह ने उनके ईशाखेल तथा मूसाखेल नामक ठिकानों को हथिया लिया और झंग पर हमला बोला तथा बन्दूक बनाने के लिए उन दिनों मशहूर कोटली नामक स्थान को काबू में कर लिया। उन दिनों जम्मू का राजा ब्रजराज अनेक प्रमाद तथा ऐयाशी में फंसकर जनता को परेशान कर रहा था, महासिंह की इच्छा हुई जनता के दुखों को दूर कर दिया जाए, किन्तु ब्रजराज द्वारा, महासिंह की सहायता से अपने खोये हुए इलाके को पाने की इच्छा से की गई प्रार्थना के कारण महासिंह ने उस पर हमला नहीं किया, पर ब्रजराज कन्हैया मिसल के सरदार हकीकतसिंह को जीत नहीं सका। थोड़े दिन बाद हकीकतसिंह ने महासिंह को ब्रजराज पर हमला करने के लिए राजी कर लिया, लेकिन महासिंह के पहुंचने से पहले ही उसने आक्रमण कर दिया। इस पर महासिंह उससे नाराज हो गए। महासिंह द्वारा जम्मू की

जीत स मिली सम्पत्ति को अकल हो ले लन के कारण हकीकत राय का पुत्र जयसिह बहुत नाराज हुआ। अमृतसर के पवित्र तालाब म स्नान करन गए महासिह न जसिह स नाराजगी दूर करन क लिए भी वहा पर वह नही माना। वह जम्मू की सम्पत्ति का आधा भाग मागता था और महासिह उसका दन क लिए तयार नही था। अन बात यहा तक पहुची कि दोनो जयसिह के निवास स्थल बटाले पर लडाई के मैदान म आ गए। जयसिह की हार हुई, उसका बेटा गुरबखशसिह मारा गया। नौशहरा नामक स्थल म जयसिह न फिर महासिह पर हमला किया किन्तु फिर हार खानी पडी। इसक बाद दोनो म सधि हुई, जयसिह का सधि की शर्तों म कागडे का किला ससारसिह को तथा रामगढिया का जस्सासिह का दना पडा। दोनो मिसलो की कटुता मिटान के लिए गुरबख्शसिह की पत्नी सदाकौर न अपनी बटी महताब कौर की सगाइ रणजीतसिह क साथ कर दी।

सन 1788 म भगी मिसल क सरदार गूजरसिह के स्वगवास क बाद, उनक पुत्र साहबसिह से भी महासिह की लडाई हुई। साहबसिह सहादरा के किल म युद्ध कर रहा था और महासिह तीन माह तक उसका घरा डाल रहा। इसी दौरान वह बीमार होकर गुजरान वाला आ गया, जहा उसका स्वगवास हो गया। चरतसिह तथा महासिह की वीरता के कारण सुकरचकिया मिसल का महत्त्व अन्य सभी मिसलो की अपक्षा अधिक हो गया और यह मिसल दूसरी मिसलो म बडी तथा प्रभावशाली मानी जाने लगी।

## महाराज रणजीतसिह का बचपन

उनके पिता महासिह जी का स्वगवास सत्ताइस वष की आयु म हो गया था। उस समय इनकी उम्र केवल बारह वष की थी। अत उनका लालन पालन मा मताबा द्वारा किया गया। दीवान लखपत राय इनक परामशदाता थे। सास सदाकौर राज काज मे सहायक थी। कुछ तो लडाइया तथा सघर्षों म निरतर लग रहन के कारण और शिक्षा दीक्षा का अधिक प्रचार न होन के कारण रणजीतसिह स्कूली शिक्षा प्राप्त नही कर सके। सत्तरह वष की आयु म ननई सरदार रामसिह की बटी क साथ उनकी दूसरी शादी कर दी गई। अब उनक सामन दो समस्यायें थी, एक तो कृतघ्न लखपतसिह स छुटकारा पाना और दूसर सास तथा मा की छत्र छाया स निकलकर स्वतत्र व्यक्तित्व का निर्माण करना। इनक समाधान के लिए अपनाय गये रास्त स उनके बुद्धि-कौशल का अदाज लगता है। लखपत सिह को आपन कैथल क भयकर युद्ध म भेज दिया, उसकी मृत्यु हो गयी और सास तथा मा के बन्धन स मुक्ति राजकाज की स्वय व्यवस्था

करके पा ली।

रणजीतसिंह का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। बीस वर्ष तक तो वह गृहस्थ के जंजालों से मुक्त रहे थे और अपार शारीरिक शक्ति का संचयन किया था।

## सत्ता और अधिकार की दिशा में बढ़ते उनके कदम

चरतसिंह के बाद में महासिंह के नेतृत्व में, सिख पंजाब के अधिकांश भाग पर अधिकार जमाते गए थे। यह बात अहमद शाह अब्दाली के पोते को खली, जो खानजमा खां के नाम से काबुल का शासक था। उसने अपने दादा द्वारा जीता इलाका वापस लेने की योजना बनाई और 1795-1796, तथा 1797 में लगातार तीन बार पंजाब पर हमले किये। उसके हमले के समय सिख जंगलों तथा पहाड़ों में छिप जाते थे और उसके जाने के बाद इलाके पर फिर अधिकार कर लेते थे। इस प्रकार अपने जन तथा धन की हानि किए बिना, वे अपना प्रभाव बनाये रख रहे थे। रणजीतसिंह भी इस रण कौशल में भाग ले रहे थे। वह एक ओर तो सतलुज पार के क्षेत्र पर अधिकार करने में लगे थे, दूसरी तरफ खानजमा के साथ संधि की बात चला रहे थे, इस प्रकार महाराज सूरजमल की नीति पर आगे बढ़ रहे थे, यानी उनके एक हाथ में संधि की सफेद झण्डी थी, दूसरे में तेज तलवार।

इन्हीं दिनों, शाहजमा को सूचना मिली थी कि ईरानी लोग अफगानिस्तान पर हमला करना चाहते हैं, अतः जब वह अपने घर को बचाने के लिए काबुल की ओर लौटने लगा था, तभी झेलम में बाढ़ आ गई और उसकी 12 बढ़िया तोपें नदी में डूब गई। उसने रणजीतसिंह को संदेश भेजा कि अगर वह उसकी तोपें नदी से निकलवाकर पेशावर भिजवा देंगे, तो वह उनको लाहौर तथा उसके आसपास का इलाका सौंप देगा और उनको राजा की उपाधि भी देगा। रणजीतसिंहजी ने उसकी आठ तोपें उसके पास भेज दीं और चार अपने पास रख ली होंगी। शाहजमा ने अपने वायदे का निबाह। उसने खिताब, सनद और भेंट आदि रणजीतसिंह को भेजी। इतने पर लाहौर पर असली अधिकार तलवार के बल पर ही करना पड़ा।

## छत्ता का सरदार हसमत खां और रणजीतसिंह

शाहजमां के काबुल लौट जाने के बाद, एक दिन, महाराज रणजीतसिंह शिकार से लौट रहे थे कि छत्ता के सरदार हसमत खां ने छिपकर, एकाएक उन पर हमला कर दिया। महाराज ने ठीक मौके पर दाव बचा लिया, पर घोड़ी की

लगाम कट गई यदि वह जरा भी चूक जाते तो तलवार उन पर ही पडती। उसने दूसरा वार करने को हाथ उठाया ही था कि महाराज की तलवार से उसका सिर गर्दन से अलग हो गया। महाराज ने उसका सारा इलाका जब्त कर लिया।

## लाहौर पर अधिकार

हालांकि खानजमा के खिताब और सनद के आधार पर लाहौर अब रणजीतसिंह का था, किन्तु उस पर अधिकार अभी दूसरे लोगों का था। इसी बीच, एक ऐसी घटना घटी कि महाराज रणजीतसिंह को सैनिक बल से, लाहौर पर अधिकार करना पड़ा। सिखों की भंगी मिसल के सरदारों ने, अहमदशाह अब्दाली के गवर्नर को, जबकि वह रात के समय नाच देखने में व्यस्त था, एक हमले में मार डाला था और लाहौर पर अधिकार कर लिया था। पीछे से कन्हैया मिसल के शोभासिंह भी सहायता के लिए पहुंच गए थे। इस तरह लाहौर पर तीन लोगों का कब्जा हुआ किन्तु उनके उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए और लाहौर पर ठीक से नियंत्रण नहीं कर पाए। जिस समय शाहजमा से लाहौर क्षेत्र रणजीतसिंह को मिला था, उस समय चेतसिंह, मोहरसिंह और साहबसिंह लाहौर के शासक थे। चेतसिंह के अलावा, शेष दोनों असावधान तथा खाने-पीने में मस्त रहने वाले लोग थे। पर चेतसिंह से नगर के कुछ मुसलमान चौधरी नाराज थे और हर समय उसके विरोध के लिए तैयार रहते थे। इन चौधरियों से शहर के खत्री परिवार नाखुश थे। उन्होंने चेतसिंह से शिकायत की कि चौधरी बदरुद्दीन उसके विरुद्ध शाहजमा के पास नगर की खबरें भेजता है। शिकायत मिलने पर, चेतसिंह ने मियां बदरुद्दीन को गिरफ्तार कर लिया। शहर के अनेक प्रतिष्ठित लोग बदरुद्दीन को मुक्त कराने की कोशिशों में चेतसिंह के पास भी गए, लेकिन किसी की बात नहीं सुनी गई। इस नगर के प्रमुख मुस्लिम चौधरियों ने चेतसिंह के जुल्म से मुक्त कराने की प्रार्थना महाराज रणजीतसिंह से की।

नगर के नागरिकों की प्रार्थना और सहयोग के आश्वासन पर महाराज रणजीतसिंह ने, अमृतसर से पांच हजार सैनिक लाहौर को रवाना कर दिए और स्वयं ने वजीरखां की बारादरी पर डेरा डाल लिया। सन् 1799 के एक दिन, सवेरे के आठ बजे उनकी सेना ने लाहौर की ओर कूच किया। इनकी फौज के स्वागतार्थ मीर मुहकम, मुहम्मद आशिक और मीर सादी नामक तीन चेतसिंह विरोधी सैनिकों ने शहर के दरवाजे खोल दिए। सेना ने नगर में प्रवेश किया और उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद महाराज ने मुनादी करा दी कि शहर में किसी मजहब तथा जाति के आदमी को तंग नहीं किया जाएगा। इसका बड़ा माकूल असर पड़ा और महाराज की प्रशंसा घर घर में होने लगी। बहुत दिनों के बाद,

लाहौर में सुशासन की स्थापना हुई और सब लोगों ने राहत की साँस ली।

## कसूर, जम्मू, स्यालकोट, दिलावरगढ़ आदि की फतह

लाहौर पर लोक-प्रिय शासन की स्थापना कर लेने से महाराज रणजीतसिंह का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और वह दूसरे राजा तथा नवाबों की नजरों में काँटे की तरह कसकते जा रहे थे। बीस वर्ष की आयु में, उनकी इस सफलता पर दूसरे शासकों के सीने पर साँप लोटने लग गया था व उनके विरुद्ध षडयन्त्र करने पर लग गए थे। एक दिन रामगढ़िया मिसल के जस्सासिंह, अमृतसर के भंगी मिसल के गुलाबसिंह, गुजरात की भंगी मिसल के साहबसिंह, वजीराबाद के जोरावरसिंह और कसूर के निजामुद्दीन ने अमृतसर से लाहौर की दिशा में रणजीतसिंह के विरुद्ध कूच कर दिया। वे जानते थे कि युद्ध के मैदान में महाराज रणजीतसिंह से लोहा लेना आसान काम नहीं है, अतः उन्होंने एक षड्यन्त्र की रचना की। उन्होंने महाराज को सन्देश भेजा कि वह हमसे भेंट कर जाये। भेंट होने के बाद, आपसी मन मुटाव भी दूर हो जायेगा और वे अपने घरों को वापस चले जायेंगे। महाराज ने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और उनके षडयन्त्र को विफल करने की योजना भी बना ली। वह इतने चुनीदा सिपाही साथ लेकर भेंट करने गए कि किसी का साहस नहीं हुआ कि महाराज की ओर हाथ बढ़ाता। इसके बाद, खुलकर लड़ाई तो नहीं हुई, पर भीतरी युद्ध कायम रहा। अधिक शराब पीने से गुलाबसिंह की मृत्यु हो गई। उसका इलाका महाराज के हाथ लगा। इसी बीच महाराज को मालूम हुआ कि षडयन्त्र की जड़ में कसूर का निजामुद्दीन था। अतः महाराज ने कसूर पर आक्रमण कर दिया। नवाब निजामुद्दीन उनके पैरों पर आ गिरा। महाराज ने उससे कर लेने और माँगने पर सैनिक सहायता देने के आश्वासन पर उसको अपने अधीनस्थ शासक बना लिया।

इसके बाद, महाराज नारुवाली, बेहवाल तथा जसरवाल होते हुए जम्मू पहुँचे। जम्मू से चार मील की दूरी पर डेरा डाला। भयंकर परिणाम की कल्पना करके, जम्मू का राजा बीस हजार रुपये तथा एक हाथी महाराज को भेंट करने आया। उसको अपना क्षत्रप बनाकर वह स्यालकोट की ओर बढ़े। स्यालकोट का मुस्लिम शासक एक ही चपेट में हार मान गया। इसके बाद, वह दिलावरगढ़ की ओर बढ़े। उसको एक झटके में जीत लिया गया। यहाँ का सोढ़ी शासक केसरसिंह अधीन हो गया।

## लाहौर का दरबार और महाराज की उपाधि

सन 1801 के आसपास सभी शासक रणजीतसिंह का लोहा मान चुके थे। किसी में साहस न था कि वह उनके विरुद्ध सिर उठाता। अत आपने सन 1801 में लाहौर में दरबार किया। चारों ओर के सरदार उपस्थित हुए। सबने उनको भेंट दी। पुरोहितों ने मन्त्र पढे राजतिलक किया और उनको महाराज घोषित किया गया। महाराज ने मनिक सलामी ली। इसके बाद लाहौर में टकसाल की *स्थापना की गई। न्यायालय स्थापित किया गया। काजी निजामुद्दीन* और अजीमुद्दीन के भाई फकरुद्दीन को न्याय सचिव नियुक्त किया गया। इमामबख्श को शहर का कोतवाल बनाया गया। दीवानी मोतीराम को मिली। इस प्रकार, महाराज ने समान रूप से हिंदू तथा मुसलमानों को शासन में हिस्सा दिया और वह उस गलती से बच गए जो मराठा विजेताओं ने की थी। अपनी पंजाब विजय के बाद उन्होंने कमजोर मराठे प्रतिनिधियों को पंजाब में बिठा लिया था, जो अहमदशाह अब्दाली के भयंकर आक्रमण का सामना नहीं कर सके थे और *भाग खड़े हुए थे। यदि, स्थानीय तथा वीर शासक होते* तो अब्दाली की बाढ़ को रोक देते और मराठा शक्ति पानीपत की तीसरी लड़ाई के दुष्परिणाम से बच जाती। दरबार के बाद, महाराज के नाम का सिक्का जारी किया गया। उस समय खजाने में जो रकम थी, उसको दान कर दिया गया।

## अमृतसर तथा भंगी मिसल के सिख सरदारों पर अधिकार

सन् 1802 में महाराज ने तरनतारन की यात्रा की और वहां अहलूवालिया मिसल के सरदार फतहसिंह के साथ पगड़ी बदलकर मित्रता कायम की। महाराज रणजीतसिंह के बढ़ते प्रभाव के बावजूद भंगी मिसल के सरदार उनसे खार खाए *हुए तथा नाराज थे। उनसे निपटने के लिए महाराज ने एक चाल चली। आपने* उनको खबर भेजी कि लाहौर पर अधिकार करते समय जमजमा तोप को मेरे मिनामह चरतसिंह के हिस्से में रखा गया था, अत वह मुझे वापस दे दी जाय। भंगी मिसल के सरदारों ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया, अत महाराज को उन पर हमला करने का बहाना मिल गया। अमृतसर की इस चढ़ाई में फतहसिंह उनके साथ था। गुलाबसिंह की विधवा रानी ने शहर के द्वार बन्द करा दिए। महाराज ने लाहगढ़ द्वार से और गुलाबसिंह ने हाल दरवाजे से सामना किया। घोर संग्राम के बाद नगर पर अधिकार कर भी लिया गया किन्तु महाराज के आदेश से वहां लूट मार न हो सकी। रानी तथा उसके सरदारों ने

महाराज रणजीतसिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया।

फगवाड़ा, होशियारपुर, लुधियाना तथा कांगड़ा पर अधिकार

महाराजा को सूचना मिली कि चूहड़मल खत्री की विधवा फगवाड़ा में अपना स्वतंत्र राज्य कायम करने की योजना बना रही है। इससे पहले कि वह अपनी योजना को कार्यान्वित करती महाराज ने फगवाड़ा को अपने अधिकार में ले लिया और विधवा को हरिद्वार भिजवा दिया। इस बीच संसारचन्द ने होशियारपुर तथा बैजवाड़ा पर हमला कर दिया। महाराज ने भी उधर अपनी सेना भेज दी। संसारचंद मारा गया और इस तरह दोनों पर महाराज का अधिकार हो गया। उन दिनों लुधियाना पर राजपूत मुसलमान इलियस खां की दो विधवाओं का अधिकार था। महाराज ने दोनों को भगा दिया और अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उन दिनों गोरखा जनरल अमर की नजर कांगड़ा पर थी, अतः उसने कांगड़ा का घेरा। महाराज तुरन्त सेना के साथ कांगड़ा पहुंचे। अमरसिंह का प्रतिनिधि जोरावरसिंह महाराज से मिला, उसने महाराज के खर्चे का दूना नजराना पेश किया, लेकिन महाराज ने उसका अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार कांगड़ा पंजाब का अंग बना, अन्यथा वह नेपाल का अंग होता। इसके अतिरिक्त, उन्होंने जडियाला, रायकोट, जगराम, तिलाड़ी आदि को भी अपने अधिकार में करके पंजाब को संगठित किया।

## कुतुबुद्दीन को पाठ पढ़ाना

महाराज द्वारा पराजित कसूर के निजामुद्दीन का साला कुतुबुद्दीन पंजाब में महाराज रणजीतसिंह के राज्य को कुफ समझता था। वह जनता में, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य पैदा करके कसूर में स्वतन्त्र राज्य स्थापना की योजना बनाने लगा। महाराज ने उस पर धावा बोल दिया, उसने अधीनता स्वीकार कर ली थी, पर थोड़े दिन बाद वह फिर शक्ति इकट्ठी करने लगा था, तब महाराज ने फिर उस पर हमला किया। एक महीने तक किले में बन्द रहने के बाद उसको हारना पड़ा। महाराज का किले पर अधिकार हो गया।

## नाभा और पटियाला राज्यों में सन्धि कराना

सन् 1806 की बात है कि नाभा तथा पटियाला के शासक आपस में झगड़ पड़े। दोनों की लड़ाई तूल पकड़कर पंजाब में बढ़ती सिख ताकत को कमजोर कर सकती थी और इस प्रकार एक ओर तो अंग्रेजों के पंजाब में प्रभाव तथा दूसरे

अफगान आक्रान्ताओ के हमलो को आसान बना सकती थी। दोनो ने महाराजे रणजीतसिंह को झगडे का फसला करने के लिए बुलाया। महाराज अपनी सना लेकर गए। दोना मे कुछ लडाई भी हुई, लेकिन महाराज न बीच मे पडकर मामला सुलझा दिया और दोना म राजीनामा हो गया। इस प्रकार एक दुघटना टल गई।

## नकिया मिसिल के सिखो के यहा शादी और हरियाणा प्रान्त पर अधिकार

इतिहास का वह ऐसा युग था कि बेटी और रोटी देने स परस्पर लडाई झगडा, दोस्ती तथा भाई चारा म बदल जाया करता था। महाराज रणजीतसिंह न भी विरोधी सिख मिसिलो के साथ मित्रता स्थापित करने के लिए इस हथियार का प्रयोग किया था। सन 1802 म उन्होने नकिया मिसल के सरदारो की कन्या से विवाह किया। उनके देसासिंह को कागडा का कमाडर बना दिया। इसी दौरान मडी तथा सुकेतकल्लू से भटे ली और रास्ते म सरदार बघेलसिंह की विधवाओ से हरियाणा का इलाका छीनकर अपने हाथो म ले लिया।

## सरहिन्द, राडू, भरतगढ और नारायणगढ पर अधिकार

सन 1808 म महाराज पटियाला तथा उनकी रानी म कुछ झगडा हो गया था, उसका निपटारा करने के लिए महाराज रणजीतसिंह पटियाला गए थे। लौटते समय आपने सरहिन्द के इलाके से खिराज वसूल किया नारायणगढ के किले को जीतकर फतहचद अहलूवालिया को सौंप दिया। राडू का शासक नारायणगढ के युद्ध म मारा गया था अत उसका इलाका भी अपन अधिकार म ले लिया। सरदार भावलसिंह की सना से भरतगढ छीन लिया और दीवान हुक्मचन्द स वादनी का इलाका छीनकर अपन अधिकार म कर लिया।

## इतिहास का एक गलत निणय टल गया

महाराज के बढते हुए प्रभाव तथा छोट छोटे शासको क क्षेत्रो को अपन अधिकार म लेने की नीति से पजाब के कुछ राजा चिंतित होने लगे। उनको अपना अस्तित्व तथा राज्य खतरे का शिकार होता नजर आने लगा। इसलिए सतलुज पार के कुछ राजाओ न मिलकर पटियाला राज्य म एक मीटिंग की। उसमे विचार यह करा था कि उनको महाराज रणजीतसिंह के साथ मिलना चाहिए अथवा

अंग्रेजों के साथ। कुछ की राय थी कि रणजीतसिंह उनका तुरन्त हजम कर जायगा और अपने कर लगायेंगे। अतः तय हुआ कि अंग्रेजों की शरण में जाना चाहिए। अस्तु जींद के महाराज भागसिंह, कैथल के राजा लालसिंह, पटियाला के दीवान चैन, नाभा का एजेन्ट गुलाम हुसैन एक शिष्टमण्डल लेकर दिल्ली आए और अंग्रेजों की शरण पाने के लिए लिखित प्रार्थना-पत्र पेश किया। लेकिन अंग्रेज भी रणजीतसिंह से उस समय टक्कर लेने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए उन्होंने शिष्टमण्डल को कोई आश्वासन नहीं दिया। महाराज रणजीतसिंह को जब घटना का पता लगा तो उन्होंने सबको सम्मानपूर्वक अमृतसर बुलाया। उनको धैर्य दिलाया, आगा-पीछा समझाया और इस तरह इतिहास का एक गलत निर्णय टल गया।

## गुजरात तथा वजीराबाद पर अधिकार और पहाड़ी राजाओं का दमन

महाराज रणजीत सिंह जानते थे कि आने वाले समय में अंग्रेज-सेना अपनी ताकत तथा साम्य रण-कौशल के बल पर, भारत को निगल सकती है। इसकी रोक का एक ही तरीका था कि वह अपनी सेना को युद्ध-कौशल में पारंगत करते और अपनी ताकत को बढ़ाते। यह सोचकर वह दोनों दिशाओं में आगे बढ़ रहे थे। वह सेना का प्रशिक्षण भी दिलाते और छोटी छोटी ताकतों का समाप्त करके अपनी शक्ति को बढ़ाते थे। सन् 1809 में वजीराबाद का शासक मर गया था इस अवसर को आपने वजीराबाद को अपने राज्य में मिलाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मौका। अतः वह ससैन्य वजीराबाद गए। जोधसिंह के पुत्र गंगासिंह ने उनको एक लाख रुपये भेंट करके उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। गुजरात के शासक साहबसिंह तथा उसके पुत्र के बीच झगड़ा था। अतः आपने गुजरात पर हमला कर दिया। साहबसिंह भागकर जलालपुर के किले में छिप गया। वहां भी उसका पीछा किया गया और जलालपुर को भी ले लिया।

सन् 1811 में वह दीनानगर पहुंचे और उन पहाड़ी राजाओं को झुकने के लिए मजबूर कर दिया जो गुरु गोविंद सिंह के समय से ही हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का वातावरण पैदा कर रहे थे। महाराज के विरुद्ध 'अंग्रेजों की शरण जाने वाले नूरपुर के राजा से तथा उसके ससुर से राज्य छीन लिया गया। और उसको अधिकार में कर लिया गया।

## मुलतान विजय

महाराज रणजीत सिंह ने मुलतान के सरदार को खिराज तथा नजराना देने के लिए पहले ही मजबूर कर लिया था, फिर भी वह उसे अपने अधिकार में लाये बिना अपनी योजना को अधूरी समझते थे। वहां का शासक मुजफ्फर खां भी समझ गया था कि महाराज की नजर मुलतान पर है, इसीलिए वह भी चौकसी में था और तैयारी कर रहा था। महाराजा ने उसको समय न देना होशियारी समझा और दीवान मोतीराम भवानीदास हरीसिंह नलुआ और दीवानचन्द्र को मुलतान के लिए रवाना किया। मुजफ्फर खां ने डटकर सामना किया और इनके हमले को नाकामयाब कर दिया। ये लोग खाली हाथ लाहौर लौट आए। महाराज रणजीत सिंह इस पराजय को जीत में बदलने के लिए बेताब हो उठे। अतः अगले वर्ष सन 1818 में 25 हजार सिख सैनिक मुलतान की ओर भेज दिए। रावी तथा चेनाब के द्वारा रसद का सामान भेजने का इंतजाम कर दिया गया। दीवान मोतीराम ने मुलतान को घेर लिया। तोपों के गोलों से किले की दीवार में छेद कर दिए। मुजफ्फर खां ने जिहाद का नारा लगाकर मुस्लिम सरदारों को सिखों के विरुद्ध खड़ा करने का प्रयास किया। पर उसकी फौज लगातार पिटती रही। कुछ सिपाही भाग गए कुछ ने हथियार डाल दिए। उसके पास थोड़े से सिपाही बच रहे थे, तभी साधूसिंह ने शुक्रवार के दिन गजब का हमला कर दिया और सब दुश्मनों का सफाया कर दिया। मुजफ्फर खां अपने बच्चों के साथ कुर्बानी के प्रतीक हरे कपड़े पहनकर, सामने आ गया। उसी समय सिख सैनिकों ने हमला किया। और पांचों बेटों सहित उसको मार डाला। किले पर अधिकार कर लिया गया। उनकी खुशी में लाहौर तथा अमृतसर में रोशनी की गयी। गलियों में घूम घूमकर महाराज ने रुपये फेंके। हिन्दू सिख तथा मुस्लिम जनता ने खुशी मनाई। इस विजय से उनकी शक्ति बढ़ गई। दूसरे लोगों पर आतंक छा गया। रणजीतसिंह पंजाब में ही नहीं समूचे देश में एक शक्ति के रूप में उदय हुए।

मुलतान को जीतने के बाद महाराज ने साढ़े छः लाख के लगान पर श्याम सिंह पेशावरिया को दे दिया था, लेकिन श्यामसिंह ने अत्यधिक धन बटोरने के उद्देश्य से जनता पर भारी अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया और महाराज को इसकी खबर लगी तो आपने श्यामसिंह को कैद कर लिया तथा भाई बदन हजारी को वहां का सूबेदार बनाया एवं सावन लाल को माल अफसर नियुक्त किया। यह घटना बताती है कि महाराज रणजीतसिंह का ध्यान जनता के हितों पर टिका था।

## डेरेजात हजारा, तथा कबीलो का दमन

मुलतान विजय के बाद डेरजात और हजारा के इलाके पर अधिकार करना लाजमी बन गया था। । इसलिए राजकुमार शेरसिंह और तारासिंह को सेना के साथ भेजा गया। वहा इलाकेदार मुहम्मदान अनेक मुसलमान साथियो को भडकाकर सामना करने के लिए आया, पर लडाई म मारा गया। उसके बेटे न 75 हजार रुपय देकर सधि कर ली। इसी दौरान खबर मिली कि हजारा, पिलखी, धतूडा और तिखला के मुस्लिम सरदारो ने मक्खनसिंह को कत्ल कर दिया है। अत स्थिति पर नियत्रण करने के लिए महाराज न दीवान रामदयाल और अटारी के श्यामसिंह को राजकुमार शेरसिंह के साथ भेजा। दोनो ओर से जम कर लडाई हुई। सिख सेना न शत्रुओ का सफाया कर दिया। इस पर अन्य स्थाना के मुस्लिम सरदार एकत्र होकर सामने आ गए। इस लडाई मे दीवान रामदयाल काम आए। महाराज क्रोध से भर उठे और विरोधियो को मजबूर होकर महाराज को कर देना पडा, अन्यथा वे रणजीत सिंह के कोप का भाजन थे।

## रावलपिंडी कन्नवाड फतहकोट भक्खर डेराइस्माल खा, खान गिरान लैया, फेजगढ, मनकेरा आदि पर अधिकार

सन् 1820 मे महाराज रणजीत सिंह न झेलम नदी को पार किया और रावलपिंडी के सरदार नदसिंह को हरा कर रावलपिंडी को अपने अधिकार म कर लिया। सन 1821 मे कन्नवाड और फतहकोट को जीतकर भी अपने राज्य मे मिला लिया। इसके बाद हरीसिंह नलुआ, दीवानचद तथा दीवन कमाराम आदि सरदारा को भेजकर भक्खर जीत लिया। इनकी जीत के बाद सरदार दिलसिंह तथा जमादार खुशहाल सिंह द्वारा डेराइस्माइल खा को पराजित कराया। वहा के अधिकारी मानक राय ने बडी मजबूती के साथ सामना किया, किंतु अत म पकडा गया। इसके बाद खान गिराज, लया तथा फेजगढ पर अधिकार कर लिया गया। इसके बाद महाराज की फौज मनकेरा की ओर गई। वहा के नवाब हाफिज रहमत खा ने किले के भीतर से मुकाबला किया। किले मे पानी का अभाव था। पानी बाहर से ऊटो पर आता था। महाराज की सेना ने पानी की आमद को रोक दिया। चौबीस दिन तक लडाई होती रही। अत मे नवाब ने हार मान ली और सधि की प्राथना की। इस विजय से 28 तोपें तथा 10 लाख की आमदनी का इलाका महाराज को मिला।

## नोशेरा की लडाई और जीत तथा कबीलो के विद्रोहियो का दमन

काबुल के शासक मुहम्मद अजीम की हमेशा कोशिश यह रहती थी कि वह महाराज के भारतीय इलाको को हथिया ले। उसके दमन के लिए 1823 मे आपने राहिताश नामक स्थान पर अपनी सेना इकट्ठी की और वहा से रावल पिंडी की ओर कूच करा दिया। इसी समय, पेशावर मे मुहम्मद यार खा से नजराना वसूल करने के लिए अजीजुद्दीन को भेजा। मुहम्मद यार खा ने बिना किसी हुज्जत के नजराना दे दिया और साथ म बहुत से अच्छे घोडे भी दिए। अजीम खा को अजीजुद्दीन का यह काम पसद नही आया। उसने एक सेना के साथ काबुल तथा पेशावर की ओर कूच किया। रणजीतसिंह भी उसकी घेकडी को मिटाना चाहते थे। अत आपने दीवान कृपाराम और सरदार हरीसिंह नलुआ को सेना के साथ पेशावर की ओर भेजा। उन्होने पहले जहागीराबाद को अधिकार में लिया। अजीम खा ने जहाद का नारा लगाया और समस्त पठानो को एकत्र करके नौशेरा पर मोर्चा लगाया। महाराज न खडगसिंह तथा दीवानचद के साथ एक सेना पहली सेना की मदद को भेज दी। दोस्त मुहम्मद तथा जबर खा भी सामने आ डटे। इस स्थिति को काबू मे लाने के लिए महाराज ने 15 हजार सैनिको के साथ, घोडा पर अटक नदी को पार किया। हाथियो द्वारा तोपें पार कराई गईं। कई हजार सनिक नदी म बह गए पर महाराज न नदी पार करके असम्भव काम को सम्भव बना दिया। इस समय बीस हजार पठान-सेना महाराज के सामने खडी थी। पठानो की भयकर मार से जनरल सतगुरु सहाय और महासिंह खेत रहे। जान बचाने के लिए मिश्र मनिक पहाडी स घाटियो म उतरने लगे। अकाली फूलसिह ने अपन साथियो को प्रोत्साहित किया। वह तजी म पठाना पर झपटा पर गोली का निशाना बनकर खेत रहा। इससे महाराज ने स्वय धावा बोला। दीवानचद ने अपना तोपखाना लगा दिया। शाम तक घमासान लडाई हुई पठाना ने मोर्चा सभाले रखा। महाराज न अपनी गोरखा सेना को आग के मोर्चे पर तनात किया और पीछे सिख सनिक लगा दिए। अब कई ओर से पठानो पर प्रहार होने लगा था। अत मे उनको मैदान छोडना पडा। अजीम खा भाग चुका था। महाराज न हस्तनगर को अपने अधिकार मे किया। 17 मार्च को पेशावर पर अधिकार कर लिया गया। सिख सनिको न खबर तक का क्षेत्र रौंद डाला। तब महाराज ने दोस्त मुहम्मद तथा यार मुहम्मद को बुलाया। जीता हुआ क्षेत्र उनको बाट दिया। उनसे नजराना लेकर वह 26 अप्रैल को लाहौर लौट आए। इस तरह महाराज ने बहादुरी तथा बुद्धिमानी का परिचय दिया। दोस्त मुहम्मद के साथ दोस्ती का रिश्ता कायम किया।

पिपली और धमतूर आदि कबीलो के लोग धार्मिक जनून के कारण प्राय

रणजीतसिंह के खिलाफ विद्रोह किया करते थे। सन् 1823 मे महाराज की इच्छा हुई कि इनसे अंतिम तौर पर निपट लिया जाए। अत आपने सरदारहरीसिंह नलुआ को सेना के साथ वहा भेजा। हरीसिंह ने उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया। जैसा कि अब्दाली, तैमूर तथा नादिरशाह की फौज भारत मे करती थी। हरीसिंह ने उनके गाव जला दिये। विद्रोहियो का खोज खोज कर मारा। इसी बीच हजारा के लोगो ने विद्रोह कर दिया और महाराज के प्रतिनिधि अब्बासखा को बन्दी बना लिया। नलुआ ने उनका भी दमन किया। अब्बास को कैद से छुड़ाया। और उनकी इतनी अधिक धुनाई की थी कि नारिया रोते बच्चो को नलुआ का नाम लेकर डराती और चुप करती थी।

## कश्मीर और महाराज रणजीत सिंह

कश्मीर भारत का स्वर्ग माना जाता है। उस पर विदेशियो की नजरें हमेशा टिकी रही हैं। महाराज रणजीत सिंह की आखें भी कश्मीर की ओर लगी थी। उन दिनो, कश्मीर काबुल के अधीन था और अतामुहम्मद उसका सूबेदार था। सन् 1810 मे सूबेदार ने शुजा को सहायता देकर उसके विरोधी भाई महमूद को पराजित करा दिया था। महाराज को पता लगा कि शाह महमूद कश्मीर के सूबेदार अतामुहम्मद को दडित करने के लिए आ रहा है। अत महाराज न उसके साथ मित्रता के सम्बध स्थापित कर लिये, ताकि उनकी कश्मीर योजना पूरी हो सके।

1810 ई० मे ही महाराज के सेनापति दीवान हुकमचद न भम्बर तथा राजौरी पर आक्रमण कर दिया। वहा के सुल्तान खान ने थोडा सा प्रतिरोध किया, पर वह दीवान हुकमचद का सामना न कर सका और चालीस हजार रुपय खिराज देकर छुटकारा पा गया था। दूसरी ओर महाराज न कटाल मे गगा का किला छीन लिया था। शाह मुहम्मद से दोस्ती होन के बाद वह लाहौर वापिस आ गए थे। यहा आने पर उनको सूचना मिली कि सुल्तान खा न दीवान हुकमचद द्वारा नियुक्त भम्बर के इलाकेदार इस्माइल खा को निकाल दिया है। अत भाई रामसिंह तथा कुवर खडगसिंह को सुल्तान खा को दण्ड देने के लिए भेजा गया, लेकिन सिख सनिको को मुह की खानी पडी, लेकिन जब सुल्तान खा ने यह सुन लिया कि दीवान हुकमचद सेना लेकर आ रहा है तो यह डर गया और सधि करने के लिए तैयार हो गया। दीवान हुकमचद उसको अपने साथ लाहौर ले आए, जहा महाराज न उसको कद करा लिया था। और उसका इलाका अपने राज्य मे मिला लिया।

इधर इस्माइल खा स्वतन्त्र बनने की योजना कर रहा था। उसने राजौरी के

अजीज खा के साथ मिलकर, अतामुहम्मद की सहायता स बगावत कर दी। महाराज ने स्वय राजौरी जाकर विद्रोह का दमन कर दिया। उन दिना काबुल को अमीर शाह जमाल और शुजा के परिवारा न लाहौर की यात्रा की थी, महाराज ने उनका बडा स्वागत कराया। वह चाहते थे कि शुजा लाहौर म ही रहे ताकि उनको अपनी कश्मीर योजना को पूरी करन मे सुविधा मिल सके।

वजीर फतह खा को कश्मीर के सूबेदार अतामुहम्मद और उसके भाई जहादाद, जो अटक का किलेदार था, सजा देने के लिए कश्मीर जा रहा था। उसने सोचा कि महाराज रणजीत सिंह की सेना कश्मीर के पहाडी रास्तो से परिचित होगी, इसलिए उसने उनके साथ मिलकर यह अभियान चलाने की योजना बनाई। महाराज ने भी अपनी योजना पूर्ति का स्वर्णिम अवसर माना और वह तैयार हो गए। उनकी शत यह थी कि कश्मीर की लूट से प्राप्त एक तिहाई भाग उनको मिलना चाहिए। शत स्वीकार हान के बाद, हुकमचद को, बीस हजार सेना के साथ कश्मीर के लिए रवाना कर दिया गया। दोनों सनाए कश्मीर पहुची। अतामुहम्मद उनका सामना न कर सका। वजीर फतह खा ने शाह महमूद के नाम पर कश्मीर पर अधिकार कर लिया और वहा की व्यवस्था अपन भाई अजीज खा को सौप दी। जाट सिखा को अगूठा दिखा दिया। दीवान हुकमचद खाली हाथ कश्मीर से लौट आय। इस पर रणजीतसिंह गुस्से स भर उठे। उन्होंने तुरत अटक के किलेदार का लिखा कि वह किला सिखो को सौंप द। जहादाद के पास कोई चारा न था, मजबूरी म उसको किला महाराज रणजीत सिंह को सौपना पडा। कश्मीर को अधिकार में लेन की दिशा मे यह उनका पहला कदम था।

उसी समय वजीर फतह खा का कश्मीर स लौटना हुआ। वह अटक आया। सिख सेना के साथ उसकी मुठभेड हुई। दीवान हुकमचद सिख सेना की पीठ पर थे, अत वजीर फतह खा तथा उसके भाई दोस्त मुहम्मद को मैदान छोडना पडा। 13 जुलाई सन 1813 का विजयश्री सिखो को प्राप्त हुई। इस विजय के बाद महाराज ने अटक की यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य पहाडी राजाआ स कर वसूल करना और कश्मीर विजय की योजना तैयार करना था। तथा उत्तर भारत मे एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना था, जिसकी सीमा की ओर कदम बढाने की हिम्मत किसी की न हो। इस योजना की पूर्ति के लिए आपने गुजरात के रास्ते से अपनी सनाए कश्मीर भेजी और भम्बर तथा राजौरी होते हुए व ठट्ठा म जा पहुची लेकिन कश्मीर के सूबेदार की सेनाओ ने बहराम किला पुल काटकर उनका आगे बढना रोक दिया, लेकिन राजौरी के सरदार न महाराज को दूसरा रास्ता बता दिया और उन्होंने बहराम के किले पर अधिकार कर लिया। इसी बीच बरसात शुरू हो जान के कारण महाराज की सेना का आगे

बढ़ना रुक गया और वह लाहौर लौट आए ।

अगले वर्ष फिर कश्मीर अभियान की तैयारी के सिलसिले में स्यालकोट में सेना इकट्ठी की गई । दीवान हुकमचंद की राय थी कि कश्मीर अभियान से पहले राजौरी में युद्ध का सामान एकत्र कर लिया जाये लेकिन महाराज ने उनके परामर्श पर ध्यान नहीं दिया और अभियान प्रारम्भ कर दिया । बीमारी के कारण दीवान हुकमचंद इस अभियान में शामिल न हो सके । उनका स्थान उनके चौबीस वर्षीय पौत्र रामदयाल ने लिया । दीवान हुकमचंद की अनुपस्थिति का लाभ उठाया राजौरी के हाकिम अगरखा ने । उसने महाराज को पुंछ के गलत रास्ते पर डाल दिया और वह श्रीनगर के स्थान पर पुंछ पहुंच गए । इसमें दीवान रामदयाल की मुसीबतें बढ़ गईं । वह श्रीनगर के पास एक गांव में डेरा डाले पड़ा हुआ, महाराज के आने की प्रतीक्षा करता रहा । बरसात शुरू होने को थी, इसलिए उसने अकेले ही हरीसिंह नलुआ तथा अटारी वाले हरनामसिंह के साथ पीरपंजाल पार करके महरपुर तक सेना पहुंचा दी । अजीमखां ने मोर्चा सम्भाल लिया, पर उसको पीछे हटना पड़ा । लेकिन उसने शोपियां नामक स्थान पर मजबूत मोर्चा लगा दिया । इससे सिख सेना की प्रगति रुक गई ।

ठीक रास्ता न मिलने और बरसात शुरू होने के कारण महाराज तो लाहौर वापिस लौट आए थे, लेकिन रामदयाल की सेना घिर गई थी । अतः महाराज ने भाई रामसिंह के साथ दीवान रामदयाल की सहायता के लिए सेना भेजी, पर वह भी बहराम गले में चक्कर खाता रहा और उसको भी रास्ता न मिला । दीवान रामदयाल ने अकेले ही इस होशियारी के साथ युद्ध का संचालन किया कि अजीमखां को घुटने टेकने पड़े । उसने संधि का प्रस्ताव रखा । महाराज को भेंट भेजी, जिसे लेकर रामदयाल लाहौर लौट आया, पर कश्मीर विजय का मौका इस बार भी हाथ से निकल गया ।

इसी बीच राजौरी तथा कोटली के सरदारों ने बगावत का झण्डा बुलंद कर दिया, जिसको दीवान रामदयाल ने दबा दिया और महाराज ने कुछ दिन बाद राजौरी कोटली तथा रामगढ़िया का सारा इलाका अपने अधिकार में कर लिया । जब काबुल के वजीर फतह खां को महाराज के कश्मीर अभियान की सूचना मिली, तो वह अजीम खां की सहायता के लिए चल पड़ा । उसके द्वारा सिंध नदी पार कर लेने पर महाराज को उसके आगमन की सूचना मिली । इस पर महाराज ने दीवान रामदयाल को उसको आगे बढ़ने से रोकने के लिए भेज दिया ।

सन् 1818 में कश्मीर के नये सूबेदार जबरखां का वजीर बीरधर उससे नाराज होकर महाराज के पास आया । उसने कश्मीर विजय के समस्त तरीके महाराज को बता दिए । महाराज ने सेना को तीन भागों में बांट दिया—एक

भाग का सेनापति मिश्र दीवानचंद को बनाया गया, दूसरा भाग कुंवर खड्गसिंह को सौंपा गया और तीसरे का संचालन स्वयं महाराज ने किया।

मार्च सन 1819 में दीवानचंद्र ने राजौरी पहुंचकर अजीजखां को कैद करने का हुक्म दिया, वह भाग गया और उसके बेटे ने राज्य दीवानचंद्र को सौंप दिया। दीवानचंद्र यहां से चलकर पूंछ पहुंचा और वहां के शासक जबरखां को अपने अधीन किया। पीर पंजाल को पार करके उसने अपनी सेना को तीन भागों में बांट दिया। जाट सिख सेना 16 जून 1819 को सरायअली पर एकत्र हुई और 5 जुलाई को शोपिन के स्थान पर जाट सिख तथा पठान सैनिक आमने-सामने आ गए। दोनों ओर से घमासान लड़ाई हुई, जिसमें पठानों की हार हुई। जबरखां बुरी तरह घायल हुआ। कश्मीर पर महाराजा का अधिकार हो गया।

प्रायः देखा यह जाता है कि हारे हुए राजा तथा नगर की बुरी तरह लूट होती है लेकिन रणजीतसिंह के आदेश से कश्मीर को लूटा नहीं गया। दीवान मोतीराम को कश्मीर का गवर्नर बनाकर भेज दिया गया, लेकिन नाराज होकर बाद में उसको वापस बुला लिया और उस पर 17 हजार जुर्माना कर दिया। उसके स्थान पर भीमसिंह को गवर्नर बनाकर भेजा गया लेकिन वह अयोग्य सिद्ध हुआ अतः उसका स्थान दीवान चुन्नीलाल को दिया गया। वह वहां का शासन करने में सफल नहीं हुआ। बाद में दीवान मोतीराम पर खुश होने के बाद कृपाराम को गवर्नर बनाया गया। उसने बड़ी योग्यता के साथ कश्मीर का शासन किया। उसके काल में व्यापार की समृद्धि हुई और व्यवस्था बनी रही। उसके बाद बैसाखसिंह को वह स्थान दिया गया। वह विलास में डूब गया। जनता पर जुल्म करने लगा। शाल का व्यापार ठप्प पड़ गया। उसको महाराज ने पकड़वाकर लाहौर बुलाया, उस पर पांच लाख रुपया जुर्माना किया। शेरसिंह की सहायता के लिए जमादार खुशहालसिंह, भाई गुरुमुखसिंह और गुलाम मुहीउद्दीन को भेजा, लेकिन ये लोग भी कोई खास प्रबंध नहीं कर पाए। कश्मीर की अकाल पीड़ित जनता भागकर लाहौर आई। वे लोग रोटियों के लिए परेशान थे। महाराज ने स्थान स्थान पर उनके लिए सहायता शिविर लगाए। मन्दिरों तथा मस्जिदों में उनके खान पीने की व्यवस्था की। इस तरह एक ओर दुखी जनता की सहायता की और दूसरी ओर खुशहालसिंह के स्थान पर महासिंह को कश्मीर भेजकर वहां की व्यवस्था ठीक की।

सन् 1834 में जम्मू के राजा गुलाबसिंह की उसके सेनापति जोरावरसिंह ने गद्दी से अलग कर दिया और उसके मंत्री को राजा बना दिया। और तीस हजार वार्षिक खिराज देकर महाराज रणजीतसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह न केवल जम्मू तथा कश्मीर पर ही महाराज रणजीत सिंह का अधिकार हुआ वरन एक लोकप्रिय शासक के रूप में भी उनका यश चारों ओर

फैल गया।

## पेशावर पर अधिकार

पशावर पर महाराज रणजीतसिंह की भी नजर टिकी थी और काबुल म सूबदार दास्त मुहम्मद की भी। महाराज क लिए तो पशावर का महत्व इसलिए था कि उस पर अधिकार करन के बाद वह भारत की आर आन वाले आक्रमण कारिया को हमेशा के लिए रोक देन की स्थिति म आ जात और दोस्त मुहम्मद का पेशावर की जरूरत सना सचालन अथवा अभियान की दृष्टि से थी। उसका इशारा पाकर दिलासा खा न बन्नू क इलाके म सिक्ख अधिकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सरदार शामसिंह तथा बख्शी तारासिंह न उसको जाकर उसकी गढी म ही घर दबाया, लकिन रात के समय सात हुए सिख-सनिका पर उसन हमला कर दिया। इस अचानक आक्रमण से सकडा जाट सिख सैनिक मार गए, यदि राजा सुचितसिंह की मदद न मिली होती ता सिखा का हार का मुह देखना पडता। इस घटना के बाद महाराज को पेशावर पर अधिकार कर लेने का निश्चय करना ही पडा।

उसी समय महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ को आज्ञा दी कि कुवर नौनिहालसिंह का साथ लेकर पेशावर के विरुद्ध सैनिक कायवाही कर। आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया। अप्रैल सन् 1834 म उनकी सेनाए पशावर पहुच गइ। सुल्तान महमूद न बहुत स घोडे नजरान मे पेश किये, किन्तु सिखो ने उनका लौटा दिया। इसको नाराजगी तथा सिखा क मूड का सकत मानकर सुलतान महमूद ने अपन परिवार को काबुल की ओर भेज दिया। हरीसिंह नलुआ ने महमूद को खबर भेजी कि कुवर नानिहालसिंह शहर का निरीक्षण करना चाहते हैं। सुलतान महमूद इसका मतलब समझता था। अत उसन रात के समय भाग जाना ही उचित समझा। वह पहाडो की आर भाग गया और पशावर पर सिखा का अधिकार हो गया। यहा उल्लखनीय बात यह है कि जिस हरीसिंह नलुआ न पशावर पर महाराज रणजीतसिंह का अधिकार कराया था, उसी न 1746 1753 और 1762 के अफगान आक्रमणकारिया द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किय अकाल तख्त का पुनर्निमाण 1775 मे कराया था और इस काय के लिए बहुत-सा साना दान भी दिया था। यह वही हरीसिंह नलुआ है जिसकी तलवार से भयभीत होकर काबुल की ओर से भारत पर हमला करन वाल लोग हमेशा के लिए शात हो गये थे। इसीलिए वह न सिर्फ धार्मिक व्यक्ति था, वरन् वीर एव राष्ट्रभक्त भी था। उसम धम, वीरता तथा राष्ट्रभक्ति का अद्भुत सामजस्य था।

पेशावर पर अधिकार कर लेने के बाद भी महाराज रणजीतसिंह निरन्तर सावधान रहे। वह जानते थे कि पठान घात लगाकर हमला कर सकते हैं, इसलिए वह सेना तथा रसद निरन्तर भेजते रहे। काबुल के दोस्त मुहम्मद को, पेशावर पर सिखों का अधिकार सहन नहीं हुआ। उसने अंग्रेजों से प्रार्थना की कि वे रणजीतसिंह से पेशावर का इलाका वापस कराएं, लेकिन उत्तरभारत में, अंग्रेज अभी महाराज रणजीतसिंह के सामने पड़ना नहीं चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि अभी रणजीतसिंह से टक्कर ली जाए। अंग्रेजों से निराश होकर भी वह चुप नहीं बैठा। उसने अकबरखां को मदद के लिए ईरान भेजा और स्वयं सेना लेकर जलालाबाद तक आ गया। वहां से उसने पेशावर की ओर कूच किया, रास्ते में अलीबागान में ईद मनाई, धर्म का नारा लगाया, पठानों को इकट्ठा किया, खैबर का मुस्लिम सरदार सिखों का साथ छोड़कर जिहाद के नाम पर, उधर चला गया। खैबर पार करके वह सिक्खस्थान नामक स्थान पर आया। महाराज रणजीतसिंह भी सेना के साथ पेशावर पहुंच गए थे, लेकिन आपने बड़े राजनीतिक चतुराई से काम लिया। दोस्त मुहम्मद के साथ सुलह की लिखा पढ़ी करते रहे और दूसरी ओर अपनी रक्षा पंक्ति तथा आक्रामक शक्ति को मजबूत करते रहे। उन्होंने अपनी सेना का व्यूह बद्ध किया। अपना तोपखाना सामने लगाया, उसके पीछे सेना लगाई, उसके बाद फिर घुड़सवार तैनात किए। अजीमुद्दीन तथा हारमन को दोस्त मुहम्मद के दोनों ओर तैनात कर दिया और इस प्रकार उनको घेर लिया। जब उसको अपने घिर जाने का पता लगा तो उसने भी कूटनीति से काम लिया, उसने अपने भाई सुलतान महमूद से कहा कि अजीमुद्दीन तथा हारमन को संधि के बहाने बुलाकर कैद कर लो। उसने ऐसा ही किया। वह दोनों को भाई की कैद में छोड़कर चल दिया और जब उसको मालूम हुआ कि सिख सेना ने दोनों को छुड़ा लिया है, तो अपनी हार पर बहुत लज्जित हुआ। पेशावर पर सिखों का अधिकार हो गया। इसके साथ ही रणजीतसिंह की ताकत बहुत बढ़ गई। उन्होंने दोस्त मुहम्मद के आक्रमण से पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश को बचा लिया। पर वह अंग्रेजों की आंख में खटकने लगे।

सन 1836 में हरीसिंह नलुआ ने पेशावर से आगे जमरूद को अपने अधिकार में ले लिया। दोस्त मुहम्मद ने जब यह खबर सुनी तो उसने अपने वजीर के साथ पांचों बेटों को सेना देकर मुकाबले के लिए भेजा। हरीसिंह नलुआ की सेना पर पठानों ने हमला किया और पहले हमले में उन्होंने किले के बाहरी भाग पर अधिकार कर लिया। वे इस छोटी-सी जीत की खुशी मना ही रहे थे कि नलुआ ने भयंकर हमला कर दिया। पठानों के पैर उखड़ गए। वे भागने लगे। नलुआ ने उनकी 14 तोपें छीन लीं। उनको खैबर तक खदेड़ा और जमकर मारा। इसी बीच, उनकी सहायता के लिए समशुद्दीन फौज लेकर आ गया। भयंकर युद्ध हुआ।

इसम हरीसिंह का भयकर घाव लग जिनस उनका देहा त हो गया। राजा ध्यानसिंह न जमरद पहुचकर किले की मरम्मत कराई। महाराज स्वय पशावर गए। वहा पतीस हजार सिख सनिक तैनात किए और पठानो को हमेशा के लिए चुप कर दिया। पशावर सिखा के अधिकार म आ गया और इस प्रकार भारत पर अफगान आक्रमण की सभावना हमशा के लिए खत्म हो गई।

## दोस्त मुहम्मद के मुकाबले शाहशुजा की सहायता

उसकी सेना के सनापतियो द्वारा छोड दिए जाने पर दुर्रानी शाहशुजा को अपने राज्य से सन् 1809 मे हाथ धोन पडे थे। उसको वदी रूप म कश्मीर ले जाया गया था। कश्मीर का अफगान सूबदार अता मुहम्मद खा उसको कोहनूर देन क बाद मुक्त करन के लिए तैयार था लकिन शाहशुजा न वह रत्न दना अस्वीकार कर दिया। रणजीतसिंह क सेनापति मोहकम चन्द न उसकी प्रार्थना पर जो उसकी पत्नी वफा बेगम न की थी, उसे अतामुहम्मद की कैद से मुक्त कराया और उसको लाहौर लाया गया। वहा उसको महासिंह की हवेली म रखा गया और उसके हरम के लिए दूसरी हवेली दी गई। कुछ दिन बाद, रामसिंह न उससे कोहनूर दने के लिए कहा लेकिन उसने जवाब दिया कि जब सच्ची दोस्ती स्थापित हो जाएगी, तब कोहनूर द दिया जायगा। कुछ दिन बाद, रणजीतसिंह क आदमियो न उमस पूछा कि क्या कुछ धन के बदल वह कोहनूर द सकेगा? उसका उत्तर स्वीकारात्मक था। दानो मे सधि हुई। इसके अनुसार कोट कमालिया, झाग मिआल और खुलेनूर के जिले शुजा को दिये जान थ। इसके अलावा अपन खोए राज्य को पाने के लिए फौजी सहायता दन का वायदा भी किया गया था। इस सधि क बाद दाना की पगडिया बदली गइ और शाह ने कोहनूर रणजीतसिंह को द दिया लेकिन कुछ इतिहासकारो की मान्यता है कि महाराज रणजीतसिंह न शुजा को दिया गया अपना आश्वासन पूरा नही किया। इसलिए शाहशुजा न भारतीय नारी की वशभूषा पहनाकर अपन परिवार का लुधियाना भेज दिया। जब महाराज रणजीतसिंह का उसके परिवार के निकल जाने की बात मालूम हुई तो उनको आश्चय हुआ और शाहशुजा की गतिविधि पर नजर रखने का आदेश कर दिया गया। इस पर शुजा न भाग निकलने की योजना बनाई और अपन पलग पर एक विश्वस्त सिपाही को सुलाकर फकीर के वश म निकल गया। रणजीतसिंह ने लाहौर म रखी उसकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया। लुधियाना पहुचकर शुजा ने अग्रेजो की शरण ले ली।

एक समय वह था, जब शाहशुजा की पत्नी वफा बेगम ने रणजीतसिंह स प्रार्थना की थी कि अगर वह अतामुहम्मद खा, जो उसके पति की आखे निकलवाकर

मार डालने की योजना कर रहा था, से उसके पति की रक्षा कर लेंगे तो उनको बदले में कोहनूर हीरा दे दिया जायगा। रणजीतसिंह ने शाहशुजा को अताहुहम्मद से पुजा से बचा लिया था। इसलिए वायदे के अनुसार कोहनूर रणजीतसिंह को दे दिया जाना चाहिए था, पर शुजा की ओर से होने वाली देरी ने रणजीतसिंह के शक को बढ़ाया था, जिसका परिणाम दोनों के लिए अविश्वास तथा बचाव की नीति अपनाना हुआ। असल में शुजा चाहता था कि महाराज उसको उसका खोया हुआ राज्य दिला दें लेकिन महाराज यह काम शायद कोहनूर पाने से पहले नहीं करना चाहते थे। शुजा द्वारा टाल मटोल करने के कारण महाराज के मन में उसके प्रति अविश्वास ने जन्म ले लिया था।

## महाराज रणजीतसिंह और भारत की ब्रिटिश सरकार

जब तक अंग्रेजी राज्य योरोप में नैपोलियन की ताकत को कुचलने, भारत में बढ़ते हुए फ्रांसीसियों के प्रभाव को कम करने, मराठों की ताकत को कुचलने और राजपूताना के राजाओं के घुटने नवाने में लगा रहा, तब तक महाराज रणजीतसिंह के साथ उसके संबंध दोस्ती के रहे। दोस्ती के दौरान अंग्रेजों ने स्वयं को भारत की एक बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित कर लिया था और रणजीतसिंह ने मुलतान, अटक, कश्मीर पूंछ, नौशेरा तथा पेशावर पर अधिकार करके एक शक्तिशाली राज्य बना लिया था। अंग्रेजी सरकार उसको और वह अंग्रेजों को संदेह तथा अविश्वास की नजर से देखते थे। पर अंग्रेज बेईमान, धोखेबाज और घात लगाकर मार करने वाले थे और महाराज रणजीतसिंह वीर सिपाही थे। इसलिए अन्त में वीरता और ईमानदारी को मक्कारी तथा धोखेबाजी के सामने झुकना पड़ा था। उसके बाद देश को आजाद होने में लगभग दो सौ वर्ष लग गए।

नैपोलियन तथा मराठा ताकत पर विजय पाने के बाद महाराज रणजीतसिंह के प्रति अंग्रेजों के व्यवहार में अंतर आता गया। वे उनकी प्रगति को रोकने लगे, उनकी योजनाओं में रुकावटें डालने लगे और विवशता में रणजीतसिंह ने उनके प्रस्तावों को मान लिया।

अंग्रेज तथा जाट सिखों की संधि 1809 में अमृतसर में हुई थी और यह 1828 तक ठीक प्रकार चलती रही। महाराज रणजीतसिंह ने बाद में सन 1826 में कहा था कि चार्ल्स मेटकाफ ने विदा होते समय मुझसे कहा था कि अंग्रेजों के साथ अपनी दोस्ती का लाभ आपको बीस वर्ष बाद मिलेगा। वह बात आज ठीक निकल रही है और महाराज नहीं जानते थे कि अंग्रेज उनकी बढ़ती हुई ताकत तथा प्रभाव को रोकने की योजना बना रहे हैं।

सबसे पहले सतलुज के किनारे ब्रिटिश कैम्प से पांच मील दूर फिरोर नामक

स्थान पर एक किला जाट सिखो ने बनाया था, [illegible] अग्रेज [illegible] व्यक्ति मोह्कमच द को उसका अधिकारी बनाया गया। अग्रेजो [illegible] यह [illegible] नीति की दृष्टि से महत्त्वपूण थी। उनको वहा किले का बनना [illegible] पर 1809 की सधि के बाद सन्देह दूर हो गया।

आक्टरलानी के [illegible] जुलाई 1809 के पत्र क अनुसार दीवान मोह्कमच द, सरदार गरबसिह, बागडा का सरदार उत्तमसिह सिख राज्य की सीमा म थ और सरदार फतहसिह सरदार धनासिह और माछीवारा तथा मधावल के जिल गगडा-तलव थे और शेष क्षेत्र अग्रेजी राज्य की सीमा म था। इस सधि के अनुसार उनके जागीरदारो तथा उनके अपन अधिकार के क्षेत्र उसकी सीमा म रह। किन्तु फिरोजपुर पर रणजीतसिह का अधिकार नही माना गया। उन्होने यह तर्क दिया कि फीरोजपुर की सिख जनता पर उसका बहुत पुराना शासन है फिर भी 1838 म फीरोजपुर पर अग्रेजा न अधिकार कर लिया और 1838 म उसका सैनिक छावनी बना दिया। अब महाराज को अपनी भूल का अहसास हुआ कि उन्हाने लार्ड लेक के हमले के समय भरतपुर की सहायता न करक कितनी बडी गलती की थी। उनको अब मालूम हाने लगा कि अग्रेज उनके बिल्कुल पास आत जा रह है और उनका राजनीतिक प्रभाव कम होता जा रहा है। इसलिए आपने भी कसूर म अपनी सैनिक छावनी स्थापित कर ली।

सन 1823 तक जब वाडे लाहौर म पालीटिकल एजेंट रहा, तब तक अग्रेज-सिख सबध सामान्य रह, लेकिन उसके लुधियाना चले जान और मूरे के अम्बाला आने के बाद अग्रेजा की जाट सिखा के प्रति नीति म बडा बदलाव आ गया था। फिर भी महाराज ने नपाल के साथ अग्रेजा की लडाई म गोरखाओ की प्राथना को मजूर नही किया। उन्होने गगा तथा यमुना नदी को पार कराने की सहायता मागी थी और साहूकारा स उनको पाच लाख रुपया उधार दन के लिए कहन की विनय की थी। महाराज ने उसका नामजूर कर दिया। यह उनकी दूसरी भूल थी। 1822 म अग्रजो क खिलाफ मराठो की मदद करन की पशवा बाजीराव की माग को भी आपने नही माना था। यह उनकी तीसरी भूल थी और पहली तथा अत्यन्त बडी भूल की सन् 1823 से 1826 तक अग्रेजा के साथ भरतपुर की लडाई मे भरतपुर द्वारा अनेक बार की गई प्रार्थनाओ को न मानना। भरतपुर का प्रस्ताव था कि प्रत्येक दिन की कूच के लिए उनको एक लाख और उनके साथ रहने के बदले पचास हजार रुपय प्रतिदिन के हिसाब से उनको दिए जायेंगे, यदि वह बीस हजार सेना लेकर उनकी मदद क लिए आ जायें। लेकिन महाराज न इसको स्वीकार नही किया। इससे साबित होता है कि वह अग्रेजा से भयभीत हाने लग गए थे। उनके साथ दोस्ती बनाए रखना चाहते थ। इस तरह उन्होंने सापो को दूध पिलाने का काम शुरू कर दिया था।

1827 तथा 1831 के बीच सैयद अहमद द्वारा पेशावर म घुस पैठ की कायवाही न जाट सिख राजा को उलझाय रखा था, लेकिन 1831 म वह मारा गया। अंग्रेजो न खुलेआम सैयद की सहायता नही की, पर व दोनो की लडाई का प्रोत्साहित करते रह। 1827 म दिल्ली के अंग्रेज रेजीडेण्ट मटकाफ द्वारा सक्रेटरी को लिखे विवरण से यह बात सिद्ध होती है।

सैयद अहमद को ठिकाने लगाकर महाराज रणजीतसिंह न सिन्ध की ओर आखें फेरी थी, किन्तु यहा भी वह अंग्रेजो की चाल मे फस गए। जिस समय रोपर नामक स्थान पर गवनर जनरल और महाराज की मुलाकात हो रही थी कनल पाटिंजर सिन्ध नदी मे व्यापार करने की सुविधा की सन्धि के प्रस्ताव के साथ सिन्ध की ओर जा रहा था। इस प्रकार इस व्यापारिक सुविधा के बहान अंग्रेजो न रणजीतसिंह का सिन्ध की ओर जाना रोक दिया। यदि सिख राज्य ने सिन्ध पर अपना अधिकार कर लिया होता तो उनको अंग्रेज विरोधी देशो से सम्पक करन का मौका मिल जाता लेकिन उन्होने इस मौके को खो दिया।

1831 म लेफ्टीनण्ट अलेक्जेंडर बर्नीज न सिन्धु नदी की नाव द्वारा यात्रा की थी। दूसरे वष वह फिर पेशावर से जलालाबाद होते हुए काबुल की ओर यात्रा पर गया था। इन यात्राओ का सनिक महत्त्व था। अंग्रेज अफगानिस्तान म रुचि लेन लग गए थ। इससे रणजीतसिंह के कान तो खडे हुए पर कुछ कर नही पाए। अंग्रेज चाहत थ कि पेशावर पर सुलतान मोहम्मद का अधिकार हो जाए ताकि उनका प्रभाव अफगानिस्तान मे बढ जाए और इस ओर रूसी ताकत का बढने म रोक दिया जाए। इसलिए वायसराय ने महाराज रणजीतसिंह से लिखा पढी करके उनको इस बात पर राजी कर लिया कि अमीर सुलतान मोहम्मद स कीमत वसूल करके और उस पर अपना सैनिक अधिकार बनाए रखकर पेशावर राज्य उसे द दिया जाए। महाराज यहा भी अंग्रेजो की चाल के शिकार हो गए।

रणजीतसिंह का ध्यान सिन्ध की ओर न जाए और वह उसको अपन अधिकार म लेन की बात न सोच, इस उद्देश्य से अंग्रेजो न शाहशुजा के साथ सन 1838 म रणजीतसिंह की सन्धि कराई। रणजीतसिंह अंग्रेजो की इस दखलनदाजी के पक्ष म नही थ, शाहशुजा की सहायता तो उन्होन पहले भी की थी, पर अंग्रेज शाहशुजा पर यह एहसान करके अपना प्रभाव बढान की योजना कर रह थ। फ्रेजर के यात्रा विवरण स पता लगता है कि मध्य एशिया के क्षेत्रो म अंग्रेजो के विरोध म बडी तीव्र भावना थी। यदि महाराज रणजीतसिंह न उस विरोध का अपन पक्ष मे इस्तेमाल करके योजना बनाई होती तो अंग्रेजो का प्रभाव रुक जाता, उनकी प्रगति टूट जाती।

इसमे कोई शक नही है कि 1809 म 1824 तक अंग्रेजो की दोस्ती से

महाराज रणजीतसिंह को लाभ हुआ, लेकिन उसके बाद वह घिरते गए। उन
प्रगति पर रोक लग गई। अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ता गया और उनके पड़ोस
एक ऐसी ताकत उभरती गई, जिसने एक दिन सारे देश को निगल लिया।

## महाराज रणजीत सिंह का व्यक्तित्व और भारत के इतिहास में उनका स्थान

महाराज रणजीतसिंह शरीर और अपने राज-काज संबंधी बुद्धि-कौशल से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उनमें व्यावहारिक बुद्धि की बहुलता थी। उनको भाषाओं का ज्ञान नहीं था, पर अपने दरबार के अधिकारियों द्वारा लिखे पत्रों तथा दस्तावेजों को शुद्ध करने में उनको कोई समय नहीं लगता था। दरबारी लेखक फकीर अजीजुद्दीन द्वारा अरबी में लिखे दस्तावेजों को वह खुले दरबार में ठीक करा दिया करते थे।

वह स्वयं सिख धर्म के अनुयायी थे, पर ब्राह्मणों का आदर करते थे। वह अमृतसर के गुरुद्वारों में जाते थे, मुसलमानों की मस्जिदों तथा गुम्मदों में भी सम्मानपूर्वक जाते थे। वह सारा काम खुद करते थे। सारे निर्णय स्वयं लेते थे, पर समस्त लोगों का परामर्श भी लेते थे। पढ़े लिखे न होने पर भी ज्ञान तथा पुस्तकालयों की रक्षा करते थे। पेशावर के हमले के समय मुसलमान संत चमकनीस के पुस्तकालय को नुकसान न पहुंचाने का आदेश दिया था, जबकि भारत पर मुसलमान तथा अंग्रेज आक्रमणकारियों ने हमेशा बहुमूल्य पुस्तकालयों को बरबाद किया था।

उनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी। अपने राज्य के सभी जिलों के नाम तथा विभिन्न भागों के शासकों के नाम उनको याद थे। प्रशासन के मामले में वह स्वयं समर्थ थे किसी पर निर्भर नहीं करते थे। 18 नवम्बर 1833 से 18 दिसम्बर 1834 के सैनिक परवानों से सिद्ध होता है कि उनका अभियान के समय आगे दन की इतनी क्षमता थी कि गुंजाइश के लिए जगह नहीं रहती थी। वह बहादुर सैनिक तथा कोमल हृदय थे। उनको जब उनके सिपाहियों ने युद्ध में लगे घाव दिखाए तो वह रो पड़े थे।

कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि कार्ल मार्क्स के लिए जो महत्त्व लेनिन का था, मुहम्मद के लिए जो महत्त्व उमर का था वही महत्त्व गुरु गोविन्द के लिए रणजीतसिंह का था। गुरु गोविंदसिंह ने धर्म को सैनिक शक्ति के बल पर प्रसारित तथा प्रतिष्ठित किया था। गुरु गोविन्दसिंह तथा महाराज रणजीतसिंह के प्रभाव से उत्तर-भारत की रक्षा करने में जाट जाति को ऐतिहासिक
मिला था। उनके नेतृत्व में हिन्दू, सिख तथा मुसलमान जाट था।

संगठित हुए और देश पर अफगानिस्तान से होने वाले हमलों को हमेशा के लिए खत्म कर देने में समर्थ हुए। इस प्रकार उनको अनेक राष्ट्रीय महत्व के एतिहासिक काम करने का श्रेय प्राप्त हुआ। हिमाचल प्रदेश का कांगड़ा तथा बहुत बड़ा भू भाग आज भारत का अंग है, इसका श्रेय रणजीतसिंह को है, अन्यथा वह नेपाल का हिस्सा होता। यही नहीं, महाराज रणजीतसिंह न होते तो पश्चिमोत्तर प्रदेश पंजाब तथा कश्मीर भी भारत से अलग हो गए होते, जिस प्रकार अफगानिस्तान हो गया था।

महाराज रणजीतसिंह ने एक बहुत बड़े राज्य की स्थापना की थी, पर उन्होंने हर बात अपने अधिकार में रखकर किसी समझदार तथा शक्तिशाली उत्तराधिकारी का निर्माण नहीं किया, इसलिए उनके बाद साम्राज्य की रक्षा न हो सकी। उनको बहादुर सेनानायक मिले थे। पर वह दुर्भाग्यशाली इसलिए थे कि उनके सामने ही मोहकमचन्द, दीवानचन्द, रामचन्द्र तथा हरीसिंह नलुआ आदि वीर सेनापतियों का स्वर्गवास हो गया था।

महाराज रणजीतसिंह की सबसे बड़ी सफलता तो सिख कौम को बहादुर बनाकर देश के दुश्मनों को सफाया करने में है, अफगान आक्रमणकारियों को चूहों की तरह बिलों में घुसा देने में है, घोड़े की पीठ पर बैठकर भीलों चौड़ी नदियों को पार करके शत्रुओं का सफाया करने में है, पर उनकी सबसे बड़ी असफलता अंग्रेजों की कूटनीति को न समझकर उनको दोस्त बनाए रखकर ताकतवर बना देने में है। अगर उन्होंने पेशवा की प्रार्थना पर मराठों को सहायता दी होती, भरतपुर राजा की मांग पर अपनी सेना भेजी होती और नेपाल के राजा की मांग पर उसकी मदद की होती तो तीनों स्थानों पर अंग्रेज पिटते और देश गुलाम न होता। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उसके प्रभाव से अंग्रेजों की ताकत तेजी के साथ न फैल सकी। अन्यथा वे बहुत पहले पूरे भारत पर छा गए होते।

## महाराजा रणजीतसिंह के जीवन की एक प्रमुख घटना और उनकी युद्ध नीति

कुंवर नौनिहालसिंह की शादी नजदीक आती जा रही थी और उधर पेशावर तथा जमरौद के किले महाराज का ध्यान अपनी ओर खींचे हुए थे। परेशानी का कारण सिर्फ यह था कि उनका बहादुर सेनापति हरीसिंह नलुआ पेशावर में बीमार पड़ा हुआ था। नलुआ का डर अफगान तथा मुस्लिम इलाका में शेर से भी अधिक था। भारत पर बार बार आक्रमण करने वाले अफगानों को नलुआ ने मार मारकर पहाड़ों की गुफाओं में घुसा दिया था। उसकी बीमारी

का लाभ उठाकर अफगान पशावर तथा अमरीद पर तावत अजमाने लग गए थ। उनका नेतृत्व कर रहा था, दास्त मोहम्मद।

एक दिन यकायक खैबर के दर्रे से निकलकर दास्त मोहम्मद ने अमराद के किले पर आक्रमण कर दिया। उस समय किले मे सिफ एक हजार सिख सैनिक थे। थोडे से सिख-सैनिको न अफगान सिपाहियो के सैलाब को बडी बहादुरी के साथ रोका। इसी बीच उन्होंने प्रचार करा दिया कि पाच लाख सिख सेना आ रही है। सिख-सेना के आन को सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक याजना बनाई कि किले के चारो तरफ कुछ सिपाही रात भर माच करते रहे। दूसरी योजना यह बनाई गई कि किसी को भेजकर अमरोद पर पठान हमले की सूचना पेशावर मे हरीसिंह नलुआ का पहुचाई जाये। यह काम बहुत मुश्किल इसलिए था कि दुश्मन किले के चारो तरफ घेरा डाले हुए था।

इस काम का आसान बनाया बीबी शरणकौर न। वह जानवर की तरह चलकर दुश्मन के बीच से निकल गई और हरीसिंह को खबर कर दी गई। दुश्मन का घेरा पारकर जान की खबर सिख-सेनापति को तोप का गोला चलाकर दे दी गई। किले के चारो तरफ माच करत सैनिक 'सत सिरी अकाल, जो बोले सो निहाल' के नारे लगा रहे थे और छ लाख सिख फौज के आने की घोषणा करते रहे। इससे दुश्मन की फौज म घबराहट पैदा हुई। दूसरे दिन थोडे से सिखो ने पठानो की बाढ को रोक दिया। इसी बीच हरीसिंह नलुआ अपनी सेना लेकर पहुच गया। दानो ओर से घमासान युद्ध हुआ। हरीसिंह ने चुन चुनकर लोगो को मारा। पठान-सेना वापस भागने लगी। वह खैबर दर्रे की ओर भागी। हरीसिंह ने उसका पीछा किया। पहाडी से चली दो गोलिया हरीसिंह को लगी और वह किले म लौट आए। यही रात को उनका स्वगवास हो गया। उनके स्वर्गवास की खबर गुप्त रखी गई पर महाराज को सूचना भेज दी गई। उनको बडा दुख हुआ और क्रोध भी। पठाना को पाठ पढाने के लिए एक बडी सेना अमरोद की ओर भेजी गई। उसने पठानो की जमकर धुनाई की। दोस्त मोहम्मद जान बचाकर काबुल भाग गया। वहा सिखो ने अपना अधिकार जमा लिया।

## एक लोकगीत मे राजा नाहरसिंह

बल्लभगढ से आजादी की आवाज सुनाई दे।
नाहरसिंह के सिर पै दिल्ली का ताज दिखाई दे ॥1॥

आजादी के लिए तेवतियो ने सदा लडी लडाई थी,
इनके पितामह जीवनसिंह ने तेवतिया फौज बनाई थी,
परदादा मेहरीसिंह ने अजमेर को धूल चटाई थी,
तेवतगढ का राजा आ गया ऐसे मची बुहाई थी,
रणभूमि मे भी तेवतिया की तलवार दिखाई दे
नाहरसिंह के सिर पै दिल्ली का ताज दिखाई दे ॥2॥

नाहरसिंह दिल्ली का ताज दिखाई दे,
तेवतगढ से मेहरसिंह हरियाणे मे आया था,
आपके दादा बलराम ने बल्लभगढ बसाया था,
भरतपुर का सूरजमल किशोरी ने विवाहवण आया था,
राजमहल मे खुशी मनाई, दर्जा पटराणी का पाया था
तेवतियो के राज की सदा इतिहास गवाही दे ॥3॥

नाहरसिंह के सिर पै दिल्ली का ताज दिखाई दे,
इनके भानजे जवाहरसिंह ने दिल्ली पर करी चढाई थी,
इनकी बुवा किशोरी ने मुगलो पर तलवार चलाई थी,
भाले चुभेंगे शरीर मे हाथी की ना पार बसाही थी,
फिर लाल किले के फाटक पै बलराम ने छाती लाई थी,
लाल किले मे तेवतिया का बलिदान दिखाई दे ॥4॥

नाहरसिंह के सिर पर दिल्ली का ताज दिखाई दे,
मई 1857 में मची घमासान लड़ाई थी,
नाहरसिंह ने अंग्रेजों की भारी करी पिटाई थी,
लड़ते-लड़ते भारत माँ पै जान भी गंवाई थी,
श्री जयमलसिंह जाट ने कथा तेवतिया की गाई थी,
सपने में भी अंग्रेजों को तेवतिया की ललकार सुनाई दे ।5।।
नाहरसिंह के सिर पै दिल्ली का ताज दिखाई दे,

— महाशय जयमलसिंह द्वारा रचित

# 1857 का महान् क्रान्तिकारी राजा नाहरसिंह

बल्लभगढ के राजा नाहरसिंह की गिनती देश के महान वीरो मे होनी चाहिए। वह आजादी की पहली लडाई के महान शहीद है। इस लडाई मे उनकी कुर्बानी विशुद्ध देश भक्ति के आधार पर हुई थी। अग्रेजो ने न तो उनका राज्य छीना था और न उनके साथ कोई ज्यादती की थी, जैसा कि दूसरे राजाओ के साथ किया गया था, फिर भी उन्होने सन् 1857 मे विद्रोहियो का साथ दिया, बादशाह बहादुरशाह की रक्षा करते हुए, जब तक जिए अग्रेजो को दिल्ली पर अधिकार करने से रोकते रहे विद्रोही सिपाहियो को मदद देते रहे और जब तक चादनी चौक की कोतवाली के सामने उनको फासी पर नही लटका दिया, तब अग्रेजो को नाको चने चबवाते रहे।

## बल्लभगढ का संक्षिप्त इतिहास और राजा नाहरसिंह

दिल्ली से थोडी दूर पर फरीदाबाद के पास बल्लभगढ नामक स्थान है। इसके किले का निर्माण बालू नामक व्यक्ति ने कराया था। बालू अर्थात बलराम के पिता फरीदाबाद की मालगुजारी वसूल किया करते थे। यह अधिकार उनके ताऊजी गोपालसिंह को फरीदाबाद के मुगल अधिकारी मुर्तजा खा ने दिया था। आगे चलकर बलराम के पिता चरणदास को यह अधिकार मिला था। चरणदास साधु स्वभाव के थे अत समय पर मालगुजारी वसूल करके खजाने मे जमा नही करा पाये। इस पर उनको कैद मे डाल दिया गया। बलरामसिंह उर्फ बालू ने उनको छुडाने की एक तरकीब निकाली। उसने बर्तनो मे नीचे तांबे के सिक्के बिछाकर ऊपर से सोने की अशर्फिया बिछा दी और मुर्तजा खा को भेंट करके पिता को छुडा लिया। उन दिनो की परिस्थितियो को देखते हुए यह बेईमानी नही थी, राजनीतिक चतुराई थी। पिता को कैद से छुडाकर वह महाराजा भरतपुर की शरण मे चला गया। बाद मे सूरजमल ने दबाव डालकर सीहि भूंडे लोहागढ मुजहदी और मिर्जापुर नामक पाच गाव जागीर मे दिला दिए।

बलरामसिंह चतुर भी था और बहादुर लडाकू भी। उसने एक [illegible] लगाकर जाविद खा को मार डाला। आसपास के इलाके पर [illegible]

लिया। उसकी मदद के लिए महाराज सूरजमल मौजूद थे। उनकी सहायता से बलरामसिंह ने बल्लभगढ में किला बनवाया। आसपास के इलाके को उनके मुस्लिम मालिकों से छीनकर अपने राज्य में मिला लिया। उसके कुछ आदमियों ने शम्सपुर के थाने से सरकारी आदमियों को मार भगाया। वजीर ने वहां दूसरे आदमी भेजे, जिनका बडी बहादुरी के साथ उसने सामना किया और उसने उनको जमने नही दिया। इस पर वजीर सफदरजंग को उसके विरुद्ध कार्यवाही करनी पडी। वजीर अपनी सेना लेकर गाजियाबाद तक ही पहुंचा था कि बलरामसिंह ने बरबादी से बचने के लिए मराठा सरदार की मारफत वजीर से संधि कर ली। इस प्रकार उसको मान्यता मिल गई। वह अपनी शक्ति को बढाता रहा।

सफदरजंग वजीर और नादिर जाविद के आपसी झगडे से लाभ उठाने की बलरामसिंह ने कोशिश की। जाविद खा ने उसको निमंत्रण दिया। उसके साथ दरबार किया और खिलअत दी। जाविद के परामर्श से ही उसने सिकन्दरा पर हमला कर दिया। शाही अधिकारियों को मारकर भगा दिया। व्यापारियों से धन वसूला। यह स्थान बादशाह की निजी सम्पत्ति मे था। सफदरजंग के लिए अब जावेद तथा बलरामसिंह दोनों से निपट लेना आवश्यक हो गया। उसने सूरजमल से क्या बातें की जाये इस प्रश्न पर सलाह करने के लिए जाविद को अपने घर बुलाया और उसके आने पर महल के एक एकान्तबुर्ज मे ले गया। वहा उसके आदमियों ने जाविद पर आक्रमण कर दिया। उसके शव को फिकवा दिया गया। उसकी सम्पत्ति को लुटवा दिया गया। बलरामसिंह भी अपना हिस्सा लेकर इकौर के किले मे चला गया। सफदरजंग ने अब उसके विरुद्ध भी अपनी सेना भेजनी तो वह नावो द्वारा बल्लभगढ के किले मे सुरक्षित पहुच गया।

बादशाह अहमदशाह और सफदरजंग मे लडाई के बाद दिल्ली का असली अधिकारी इमाद बन गया था। उस समय सरकारी खजाना खाली हो चुका था, लगान वसूल होता न था फौज और नौकर वेतन के लिए झगडा करते थे इसलिए इमाद ने पलवल फरीदाबाद तथा बल्लभगढ के सम्पन्न किसानों से पैसा इकट्ठा करने की योजना बनाई। इस इलाके मे अधिकांश जाट किसान थे और सम्पन्न भी थे। उनसे पैसा वसूलने के लिए इमाद ने अपने प्रधान सेनापति अकीबत महमूद खा को भेजा। वह पाच सौ बदख्शी और दो हजार मराठा घुडसवारों के साथ बलरामसिंह से मालगुजारी तथा खिराज लेने के लिए आया। इमाद ने सात हजार सिपाही बीस तोपें तथा अन्य युद्ध सामग्री अकीबत की मदद के लिए भेजी। बलरामसिंह से एक झपट हुई, पर उसने शक्ति और पैसा युद्ध पर व्यय करने की अपेक्षा खिराज देने का वायदा करके सुलह कर ली। अकीबत वहा से चला गया लेकिन कुछ लोगो के कहने पर वह बालू को खत्म करने का इरादा लेकर बल्लभगढ के एक गाव मे आकर ठहर गया। यहा बालू

को बुलाया गया। वह अपने पुत्र तथा चंद लोगों को लेकर अकीबत के डेरे पर गया। बातों बातों में गर्मागर्मी हो गई और अकीबत के आदमी उन लोगों पर टूट पड़े। उनको मार डाला गया। वल्लभगढ पर अकीबत का अधिकार हो गया। इस कार्यवाही मे मल्हारराव होल्कर का बेटा खाण्डोजी होल्कर भी अकीबत के साथ था।

इस इलाके के बहादुर जाट किसानों को नेस्तनाबूद करने के लिए अकीबत ने वल्लभगढ तथा खाण्डोजी ने होडल पर डेरा लगाया। उनकी टुकड़िया चारों तरफ जाती, लूटमार करती और जाटो को उखाडकर भगाने की कोशिशें करती थी। नन्दगाव तथा बरसाने तक धावे मारे गए। वहा से जाटो का आधिपत्य समाप्त करके सन् 1753 में मराठो ने अपने थाने स्थापित कर लिये। उधर अकीबत ने पलवल तथा घासेरा से जाटो को भगाकर सन् 1754 मे अपने अधिकार कर लिया। इन सबकी योजना भरतपुर के राज्य को मिटाने की थी।

सन् 1753 में पेशवा बाजीराव के छोटे भाई रघुनाथ राव के नेतृत्व में एक बड़ी सेना उत्तर भारत के राज्यो से चौथ वसूल करने के लिए चल पड़ी थी। मल्हारराव होल्कर उनके साथ था। वह दो माह तक जयपुर में ठहर कर छोटी-छोटी रियासतों से चौथ वसूल करता रहा। स्वयं जयपुर से 12 लाख वसूल करके वह भरतपुर की ओर बढ़ा। उधर से अकीबत तथा खाण्डोजी भी आ गये थे। रघुनाथराव बड़ी सेना के साथ था ही। कुम्हेर को घेर लिया गया। महाराज सूरजमल से दो करोड़ रुपये मांगे गए। सूरजमल ने एक पाई नही दी। कुम्हेर पर जमकर लड़ाई हुई। पालकी पर बैठकर खाइयो का निरीक्षण करते समय खाण्डेराव को तोप का गोला लगा और वह ढेर हो गया। अन्त में मराठो को घेरा उठाना पड़ा। इमाद भी मथुरा की ओर चला आया। महाराज सूरजमल की ताकत बहुत बढ़ गई।

14 जनवरी 1761 को पानीपत के मैदान मे सदाशिवराव भाऊ की पराजय लगभग एक लाख मराठा शरणार्थियो को भरतपुर राज्य में शरण देने तथा अहमदशाह अब्दाली को थका-थकाकर मारने एवं उसको लौटने के लिए विवश कर देने के बाद महाराज सूरजमल के सामने जमने की ताकत दूर दूर तक नहीं रह गयी थी। उन्होने आगरा को अपने अधिकार मे लिया और हरियाणा में शक्तिशाली राज्य स्थापित करने की योजना बनाई। इसी योजना के अन्तर्गत वल्लभगढ पर फिर से जाटो का अधिकार हुआ। आगे चलकर इसी परिवार में नाहरसिंह का जन्म हुआ।

## एक नये युग की शुरुआत

धीरे धीरे मराठा साम्राज्य के सेनापति स्वतंत्र होते गए। सिंधिया तथा होल्कर स्वतंत्र हो गए। इस तरह एक शक्तिशाली साम्राज्य बिखर गया। महाराज सूरजमल के बाद, भरतपुर की शक्ति भी विघटित हुई। पंजाब में महाराज रणजीतसिंह ने जो ताकत पैदा की वह उनके बाद बिखर गई थी। अंग्रेज भारत में घुस चुके थे। योरोप में फ्रांसीसियों की हार के बाद भारत में भी डच तथा फ्रेंच ताकतों के मुकाबले में अंग्रेज विजयी होते गए। भारतीय राज्यों का सितारा अंधकार में डूबने लग गया था।

## अंग्रेजों का भारत प्रवेश और भारत को निगलना

जिस समय मुगल सम्राट जहांगीर ने सन 1613 में सूरत में अंग्रेजों को व्यापार करने की इजाजत दी थी तब उसने यह नहीं सोचा था कि जो अंग्रेज कौम आज हाथ जोड़े उसके सामने खड़ी है एक दिन वह भारत को तबाह कर देगी उसकी संतान को गोलियों से भून देगी मुगलिया सल्तनत के बादशाह को कैद कर लेगी उसके हरम की बेइज्जती करेगी। सर टामस रो ने मुगल बादशाह से आगरा अहमदाबाद और भड़ौच में अपनी फैक्ट्रियां लगाने की इजाजत लेकर अपने पर फैला लिए थे। 1668 में बम्बई भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया था। 1633 में अंग्रेज बंगाल में घुसे थे। 1651 ई० में व्यापार करने की इजाजत लेकर फैल गए थे।

भारत में एक ओर फ्रांसीसी बढ़ना चाह रहे थे दूसरी ओर अंग्रेज। सन 1740 में अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच योरोप में लड़ाई शुरू हो गई थी फलत भारत में भी दोनों के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया था। इस लड़ाई में जीत अंग्रेजों की हुई और वे बंगाल तथा महाराष्ट्र में कई महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर सके। मीरजाफर की गद्दारी के कारण बंगाल के नवाब को प्लासी के युद्ध में हराकर अंग्रेज बड़ी ताकत के रूप में उभर आये थे। भूमिकर संग्रह का अधिकार लेकर वे बंगाल के रोजाना की कानून तथा व्यवस्था का अधिकार भी पा गए थे। पेशवा परिवार में गद्दी के सवाल पर फूट पड़ जाने के कारण अंग्रेजों को वहां भी अपनी टांगें फसाने का मौका हाथ लगा था। नाना फड़नवीस का विरोध करने की दृष्टि से पेशवा रघुनाथराव ने अंग्रेजों की शरण ली थी। उन्होंने पेशवा को मदद देकर लड़ाई शुरू करा दी और बदले में पूना दरबार में अपना प्रभाव जमा लिया।

लार्ड कार्नवालिस (1786 1793) ने मैसूर में अपना प्रभाव जमाने का

प्रयास किया । लार्ड वेल्जली ने टीपू सुलतान को हराकर पश्चिमी तट तक का अधिकार पा लिया था । वेलेजली ने उत्तराधिकार के प्रश्न पर अवध में दखल देकर अवध पर काबू कर लिया । सन 1802 में बसीन की संधि के आधार पर अंग्रेजों को पेशवा के राज्य में अंग्रेजी सेना रखने का अधिकार मिल गया था । मराठों को हराकर अंग्रेज बंगाल और मद्रास के अपने अधिकार क्षेत्र को मिलाने में सफल हो गए थे और एक बड़ी ताकत बनकर उभरने लगे थे । अब उन्होंने राजपूताना के राजाओं के साथ भी संधियां कर ली थी । गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने 1817 में कोटा तथा उदयपुर, 1818 में बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर तथा जयपुर से और अक्टूबर से लेकर दिसम्बर 1918 में बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, जैसलमेर तथा सिरोही आदि राज्यों से संधियां करके अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा लिया था । इस समय समूचे भारत में अब उनके सामने पड़ने वाला कोई राज्य नहीं रह गया था । थोड़ी बहुत ताकत बची थी तो वह भरतपुर तथा लाहौर में थी । रणजीतसिंह से अभी अंग्रेज भयभीत थे और भरतपुर अभी उनके अधिकार के सामने झुका नहीं था ।

पिंडारियों को समाप्त करके अंग्रेजों के हौसले और भी बढ़ गए थे । राजपूताने में लूटमार करने वाले अफगानों को हराकर उनकी ताकत का लोहा माना जाने लगा था । इस तरह सन 1818 तक भारत पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था । लार्ड क्लाइव ने जिस अंग्रेज राज्य की नींव डाली थी, वारेन हेस्टिंग्स तथा वेलेजली ने उसका विस्तार किया और लार्ड हेस्टिंग्स ने उसको पूर्ण बनाया । अब उनका राज्य पश्चिम में पंजाब से, पूरब में आसाम तथा बर्मा से जा मिला था । इसलिए एक ओर उनको बर्मा से लड़ाई लड़नी थी और दूसरे महाराज रणजीत सिंह से निपटना था । बर्मा से पहली लड़ाई के बाद सन 1826 में अंग्रेजों को बड़ा लाभ हुआ । आसाम, कचार और मणिपुर अंग्रेजों के हाथ लग गए । बर्मा के समुद्र तट पर उनका अधिकार हो गया । सन 1852 में बर्मा के साथ उनकी दूसरी लड़ाई हुई और अंग्रेज उस पर काबिज हो गए । अब केवल पंजाब में जाट सिख राजा रणजीतसिंह उनके रास्ते का कांटा रह गया था । उनकी मृत्यु के बाद अंग्रेजों का रास्ता साफ था । वह पंजाब को भी हड़प चुके थे । अफगानिस्तान तथा कश्मीर पर भी अपना पंजा कस चुके थे । अब उनके सामने एक ही उद्देश्य था कि भारत में कोई ताकत ऐसी न बचे रहे जो कभी सिर उठा सके । इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने देसी राजाओं के राज्यों में झगड़े कराए, उनकी व्यवस्था तथा प्रशासन में दखल दिया और जब राज्यों में झगड़े बढ़े तो अच्छी व्यवस्था करने के नाम पर राजा को पेंशन देकर राज्य को अपने अधिकार में ले लिया । इस नीति के बल पर, उन्होंने सारे भारत के राज्यों को हड़प लिया था ।

अंग्रेज व्यापारियों ने केवल भारत पर राजनीतिक दृष्टि से ही अपना पंजा न

रखा था, उनका असली मकसद था भारत के सोने को इगलण्ड म जाना। इसके लिए उन्होंने यहा के उद्योगो का बरबाद करने की नीति अपनाई। बगाल म मलमल बनती थी, जिसका व्यापार एशिया तथा यारोप के दशा तक होता था। अग्रेजा न कारीगरो को स्वतत्र रूप स धधा करन स रोक दिया, उनको कम्पनी म नौकर रखा, खुद मलमल बनवाई, उसका व्यापार किया, जिसन कपनी की नौकरी करने से इनकार कर दिया, उसके हाथ कटवा दिय। इस तरह मलमल का उद्योग और व्यवसाय खत्म कर दिया। चटगाव म जहाज बनात थ। वह काम खत्म कर दिया। नासिक म बतन बनत थ वह काम भी खत्म कर दिया। नील की खेती अपन हाथो म ले ली। किसानो से डडे के बल पर नील की खेती कराई, जिस किसान ने मना किया, उसके साथ घोर अन्याय किया। भारत का सारा कच्चा माल इगलड भेजा जाने लगा। वहा का तयार माल भारत म लाकर बचा जान लगा। सुई तक इग्लैण्ड से आन लगी। भारत आर्थिक दृष्टि स बरबाद हो गया, इगलैंड मालदार बन गया। इसके बाद अकाल पड़न लगे। हजारों की सख्या म लोग मरने लगे। अग्रेजो के प्रति लोगो म गुस्सा पैदा होने लगा। अकाल के बाद प्लेग की बीमारी फैली। भारत म, पहले यह बीमारी नहीं थी, अत लोगो को विश्वास हो गया कि अग्रेज अपने साथ यह बीमारी लेकर आये हैं।

अफगानिस्तान म अग्रेजो न लड़ाई लड़ी। उसका खच भारत के सिर पर लाद दिया। बम्बई स इगलैंड तक समुद्र म केबिल डाला गया। उसका खच भारत स वसूल किया। कहने का मतलब यह है कि भारत स हर तरीके द्वारा पसा ऐंठा गया। भारतीय मजबूर होकर सब कुछ देख रह थे पर चुप थ। अग्रेजो के विपरीत भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी।

अग्रेजो न अवध की बेगमो के साथ अनीति तथा अभद्र व्यवहार किया, बनारस के राजा चेतसिंह के साथ नीचता भरा व्यवहार किया, उसके लिए जिम्मेदार वारेन हेस्टिंग्स पर मुकदमा चलान का ढोंग रचा गया, पर उसको नरशनल हीरो मान लिया गया, सिन्धु को अनीति और अन्याय से अपन राज्य म मिलाया, झासी राज्य क साथ बेईमानी की, भूमि बन्दोबस्त के नाम पर एक ओर कम्पनी जमीन की मालिक बन गई और दूसरी ओर अग्रेजो के खुशामदी जमींदार जमीन के मालिक बन गय। आम जनता जो पहले जमीन की मालिक थी, रयत बनकर रह गई। अवध के किसानो पर मालगुजारी 20 30 लाख रुपये वार्षिक बढ़ा दी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि आम जनता स लेकर जमींदार तथा पदच्युत राजा तक अग्रेजो स नाराज होकर किसी मौके का इतजार करन लग थे।

लाड डलहौजी की नीति ने इस नाराजगी को बुरी तरह बढाया था। वह मुगल बादशाह को किले से निकालकर कुतुब मीनार के पास रखना चाहता था, इससे हिन्दू तथा मुसलमानो म क्षोभ बढ़ता गया। अवध के नवाब की सेना क

खत्म कर दिए जाने से हजारो नौकर चाकर बेकार हो गये थे। डलहौजी द्वारा पेशवा के साथ अन्याय करने, नाना साहब तात्या टोप, बिहार के कुवरसिंह के साथ ज्यादती करने तथा दक्षिण मे बीस हजार इनामी जायदादे छीन लेने के कारण घोर असंतोष छा गया था। ईसाई पादरियो द्वारा भारतीयो को बलपूर्वक ईसाई बनाने के कारण यह रोष और भी बढता जा रहा था। ये ही सन 1857 की क्रान्ति के मुख्य कारण थे, लेकिन अंग्रेजो ने अपनी असलियत छिपाने के लिए इन कारणो पर पर्दा डाल दिया और आजादी की इस पहली लडाई को सिपाही-विद्रोह का नाम दे दिया। अफसोस यह है कि एक लम्बे समय तक भारतीय इतिहासकार भी इसको सिपाही विद्रोह कहते रहे। अंग्रेजो ने इस बात का जोरदार प्रचार किया कि हिन्दू सिपाहियो ने नये कारतूसो को लेने से इनकार इसलिए कर दिया था कि उनको गाय की चर्बी से बनाया गया है। दूसरा प्रचार उन्होने यह किया कि यह लडाई सिर्फ उन सामतो या राजाओ द्वारा शुरू की गई जिसको अंग्रेजो ने गद्दी से उतार दिया था। असल मे, ये दोनो कारण झूठे थे। असली कारण था, भारतीय जनता मे व्यापक रूप से वर्तमान अंग्रेजो के खिलाफ गहरा असतोष। जिसका जन्म भारतीयो के साथ अंग्रेजो द्वारा किया गया नीचता तथा कमीना व्यवहार था, ऐसा व्यवहार जो जानवर के साथ भी नही किया जाता।

## समूचे देश मे फैल गई थी सन् 1857 की आग

26 फरवरी सन 1857 के दिन बेहरामपुर (बगाल) की छावनी के भारतीय सिपाहियो ने चर्बी लगे कारतूसो का हाथ मे लेने से इन्कार कर दिया था, इस पर अंग्रेज सेना-नायक मीचल ने उनको बहुत धमकाया और कम्पनी का बर्खास्त कर दिया गया। इसके बर्खास्त सिपाहियो ने इस बात की चर्चा दूसरे सिपाहियो से की। 29 मार्च, 1857 को मगल पाडे नामक सिपाही ने अपने सारजेंट मेजर पर गोली चला दी, निशाना चूक गया। घटनास्थल पर लफ्टीनण्ट बाग पहुच गया। उस पर भी पाण्डेय ने गोली चलाई। यह निशाना भी चूक गया। इस पर दूसरा भारतीय सिपाही तलवार लेकर दोनो अंग्रेजो पर पिल पडा और उनको जमीन पर पटक लिया। शेख पलटू नामक सिपाही ने आकर मगल पाडेय को पकड लिया, लेकिन पाडेय उससे छूट गया और अपने साथियो को सहायता के लिए पुकारने लगा। जनरल हीयरिस घटना-स्थल पर पहुचा, मगल पाडेय ने उस पर भी गोली चलाई लेकिन निशाना यहा भी चूक गया, तब स्वय पर गोली चलाई, पर वह घायल हुआ, मरा नही। इस पर हीयरिस ने 34वी पलटन को फटकारा सिपाही बरका मे चले गये। पर कम्पनी को बर्खास्त कर दिया गया और मगल पाडेय का गोली मार दी गयी।

रखा था, उनका असली मकसद था भारत के सोने को इगलैण्ड ले जाना। इसके लिए उ होने यहा क उद्योगो को बरबाद करन की नीति अपनाई। बगाल म मलमल बनती थी, जिसका व्यापार एशिया तथा यारोप के दशो तक होता था। अग्रेजा ने कारीगरो को स्वतन्त्र रूप से धधा करने स रोक दिया, उनको कम्पनी म नौकर रखा, खुद मलमल बनवाई, उसका व्यापार किया, जिसने कम्पनी की नौकरी करने से इकार कर दिया उसके हाथ कटवा दिये। इस तरह मलमल का उद्योग और व्यवसाय खत्म कर दिया। चटगाव म जहाज बनते थे। वह काम खत्म कर दिया। नासिक म बतन बनते थे, वह काम भी खत्म कर दिया। नील की खेती अपने हाथो मे ले ली। किसानो से डडे के बल पर नील की खेती कराई, जिस किसान ने मना किया, उसके साथ घोर अन्याय किया। भारत का सारा कच्चा माल इगलैड भेजा जाने लगा। वहा का तैयार माल भारत मे लाकर बेचा जाने लगा। सुई तक इगॅलण्ड से आने लगी। भारत आर्थिक दृष्टि स बरबाद हो गया, इगलैड मालदार बन गया। इसके बाद अकाल पडने लगे। हजारो की सख्या म लोग मरने लगे। अंग्रेजो के प्रति लोगो म गुस्सा पैदा होने लगा। अकाल के बाद प्लेग की बीमारी फैली। भारत म, पहले यह बीमारी नही थी, अत लोगो को विश्वास हो गया कि अग्रेज अपने साथ यह बीमारी लेकर आये हैं।

अफगानिस्तान मे अग्रेजो ने लडाई लडी। उसका खर्च भारत के सिर पर लाद दिया। बम्बई से इगलैड तक समुद्र म केबिल डाला गया। उसका खर्च भारत से वसूल किया। कहने का मतलब यह है कि भारत से हर तरीके द्वारा पैसा ऐंठा गया। भारतीय मजबूर होकर सब कुछ देख रहे थे, पर चुप थे। अग्रेजो के विपरीत भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी।

अग्रेजो ने अवध की बेगमो के साथ अनीति तथा अभद्र व्यवहार किया, बनारस के राजा चेतसिंह के साथ नीचता भरा व्यवहार किया, उसके लिए जिम्मेदार वारेन हेस्टिंग्स पर मुकदमा चलाने का ढोंग रचा गया, पर उसको नरनल हीरो मान लिया गया सिन्धु को अनीति और अन्याय से अपने राज्य म मिलाया, झांसी राज्य के साथ बेईमानी की, भूमि बन्दोबस्त के नाम पर एक ओर कम्पनी जमीन की मालिक बन गई और दूसरी ओर अग्रेजो के खुशामदी जमीदार जमीन के मालिक बन गये। आम जनता जो पहले जमीन की मालिक थी, रैयत बनकर रह गई। अवध के किसानो पर मालगुजारी 20 30 लाख रुपये वार्षिक बढ़ा दी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि आम जनता से लेकर जमीदार तथा पदच्युत राजा तक अग्रेजो से नाराज होकर किसी मौके की इन्तजार करने लगे थे।

लार्ड डलहौजी की नीति ने इस नाराजगी को बुरी तरह बढ़ाया था। वह मुगल बादशाह को किले से निकालकर कुतुब मीनार के पास रखना चाहता था, इससे हिन्दू तथा मुसलमानो म क्षोभ बढ़ता गया। अवध के नवाब की सेना के

खत्म कर दिए जाने से हजारों नौकर चाकर बेकार हो गये थे। डलहौजी द्वारा पेशवा के साथ अन्याय करने, नाना साहब, तात्या टोपे, बिहार के कुंवरसिंह के साथ ज्यादती करने तथा दक्षिण में बीस हजार इनामी जायदादें छीन लेने के कारण घोर असंतोष छा गया था। ईसाई पादरियों द्वारा भारतीयों को बलपूर्वक ईसाई बनाने के कारण वह रोष और भी बढ़ता जा रहा था। यही सन 1857 की क्रान्ति के मुख्य कारण थे लेकिन अंग्रेजों ने अपनी असलियत छिपाने के लिए इन कारणों पर पर्दा डाल दिया और आजादी की इस पहली लड़ाई का सिपाही विद्रोह का नाम दे दिया। अफसोस यह है कि एक लम्बे समय तक भारतीय इतिहासकार भी इसको सिपाही विद्रोह कहते रहे। अंग्रेजों ने इस बात का जोरदार प्रचार किया कि हिन्दू सिपाहियों ने नये कारतूसों को लेने से इनकार इसलिए कर दिया था कि उनको गाय की चर्बी से बनाया गया है। दूसरा प्रचार उन्होंने यह किया कि यह लड़ाई सिर्फ उन सामंतों या राजाओं द्वारा शुरू की गई जिसको अंग्रेजों ने गद्दी से उतार दिया था। असल में, ये दोनों कारण झूठे थे। असली कारण था, भारतीय जनता में व्यापक रूप से वर्तमान अंग्रेजों के खिलाफ गहरा असंतोष। जिसका जन्म भारतीयों के साथ अंग्रेजों द्वारा किया गया नीचता तथा कमीना व्यवहार था, ऐसा व्यवहार जो जानवर के साथ भी नहीं किया जाता।

## समूचे देश में फैल गई थी सन् 1857 की आग

26 फरवरी सन 1857 के दिन बेहरामपुर (बंगाल) की छावनी के भारतीय सिपाहियों ने चर्बी लगे कारतूसों को हाथ में लेने से इन्कार कर दिया था, इस पर अंग्रेज सेना-नायक मीचल ने उनको बहुत धमकाया और कम्पनी को बर्खास्त कर दिया गया। इसके बर्खास्त सिपाहियों ने इस बात की चर्चा दूसरे सिपाहियों से की। 29 मार्च, 1857 को मंगल पांडे नामक सिपाही ने अपने सारजेंट मेजर पर गोली चला दी, निशाना चूक गया। घटनास्थल पर लफ्टीनेन्ट बाग पहुंच गया। उस पर भी पाण्डेय ने गोली चलाई। यह निशाना भी चूक गया। इस पर दूसरा भारतीय सिपाही तलवार लेकर दोनों अंग्रेजों पर पिल पड़ा और उनको जमीन पर पटक लिया। शेख पलटू नामक सिपाही ने आकर मंगल पांडेय को पकड़ लिया, लेकिन पांडेय उससे छूट गया और अपने साथियों को सहायता के लिए पुकारने लगा। जनरल हीयरिस घटना स्थल पर पहुंचा, मंगल पांडेय ने उस पर भी गोली चलाई लेकिन निशाना यहां भी चूक गया, तब स्वयं पर गोली चलाई पर वह घायल हुआ, मरा नहीं। इस पर हीयरिस ने 34वीं पलटन को ललकारा, सिपाही बैरकों में चले गए। पर कम्पनी को बर्खास्त कर दिया गया और मंगल पांडेय को गोली मार दी गयी।

## अम्बाला, लखनऊ और मेरठ

बरकपुर के विद्रोह की कहानियां अम्बाला, लखनऊ और मेरठ पहुंची। 90 फीसदी सिपाहियों ने गाय की चर्बी से बने कारतूसों का लेने से इंकार कर दिया। अवध की पलटन बर्खास्त कर दी गई। समूचे देश में चपातियां बटीं, गुलाब का फूल घुमाया। जिस गांव के लोगों ने रोटियां ले लीं और दूसरी रोटियां बनवाकर और गांवों में बटवा दीं, उस गांव को क्रान्तिकारियों का हमदर्द मान लिया गया। जिस पलटन ने गुलाब का फूल ले लिया, उसको विद्रोहियों का समर्थक मान लिया गया।

### मेरठ का विद्रोह

मेरठ छावनी के 85 घुड़सवारों ने कारतूस लेने से इंकार कर दिया था। इनका कोर्टमार्शल कर दिया गया। सिपाहियों ने गोरे अफसरों को गालियां दीं। 9 मई की शाम को एक भारतीय अफसर ने गफ को आकर बताया कि 10 मई को मरठ के सिपाही विद्रोह कर देंगे। गफ ने अपने कर्नल को सारी बातें बतायीं। कर्नल ने गफ को डांट दिया। वह ब्रिगेडियर के पास गया, वहां भी उसने फटकार खाई। लेकिन शहर में विद्रोह के इश्तहार चिपकाये गये, अंग्रेजों के भारतीय नौकर उनको छोड़कर चले गये। 10 मई को मेरठ में विद्रोह हो गया। सबसे पहले विद्रोहियों ने जेल से अपने साथियों को छुड़ाया। कोई दूसरा बंदी उन्होंने नहीं छुड़ाया। जेल की फौजी गारद तथा पुलिस ने उनका साथ दिया पर विद्रोहियों ने खजाना नहीं लूटा। सिपाहियों ने लेफ्टीनेंट मकेंजी तथा कप्तेन क्रजी के परिवार की रक्षा की। अंग्रेजों ने यह प्रचार किया था कि विद्रोही सिपाहियों ने अंग्रेजों को मार डाला, लूट पाट की, महिलाओं को बेइज्जत किया, सरासर झूठ था।

### मेरठ से दिल्ली की ओर

मेरठ के क्रांतिकारी दिल्ली की ओर चले। रौबर्ट्स के अनुसार दिल्ली की पलटन मेरठ के विद्रोहियों का स्वागत करने के लिए तैयार थी। मेरठ के सिपाहियों ने राजघाट की ओर वाले दरवाजे से दिल्ली में प्रवेश किया। वे बादशाह की जय और अंग्रेज मुर्दाबाद बोल रहे थे। अंग्रेजों ने 38वीं पलटन को उन्हें रोकने का हुक्म दिया। वह पलटन विद्रोहियों के साथ हो गई। दिल्ली की जनता ने क्रांतिकारियों का स्वागत किया। अंग्रेजों से भाग जाने के लिए कहा गया। मेरठ के सिपाहियों ने बादशाह बहादुर शाह से तख्त पर बैठने की प्रार्थना की। उसने इंकार कर

दिया, इस पर उनको तख्त पर बैठकर उनका नेतृत्व करने के लिए कहा गया। दिल्ली पर क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया।

उधर भारतीय सिपाहियों ने लाहौर के किले पर अधिकार करने की योजना बनाई। अंग्रेजों ने मियामीर, फिरोजपुर के सिपाहियों से हथियार रखवा लिये। बाजार से जब सिपाही निकले तो जनता ने उनका स्वागत किया। पंजाब की कई छावनियों में मई के महीने में विद्रोह हो गया। विद्रोहियों का दिल्ली पर कब्जा हो जाने के बाद, हैनरी नारमन ने दिल्ली में दरबार किया। उसने अंग्रेजी राज्य की तारीफें कीं। भारतीय सिपाहियों को इनाम दिये जिन्होंने क्रांतिकारियों का पत्र ले जाने वाले आदमी को पकड़ लिया था। मेरठ और दिल्ली के विद्रोह की कहानी सुनकर शाहजहांपुर की जनता भी अंग्रेजों से लड़ने के लिए तैयार हो गई। 31 मई को वहां सेना ने विद्रोह कर दिया था। के० ने लिखा है कि वहां की जनता विद्रोह पर उतारू थी। 20 मई को अलीगढ़ की सेना ने विद्रोह कर दिया था और 23 मई को मैनपुरी तथा इटावा में विद्रोह हो गया।

16 मई की रात में गुड़गांवा में विद्रोही पहुंच गये थे। गांव वालों ने उनका साथ दिया। वहां असिस्टेंट मजिस्ट्रेट सहायता के लिए मथुरा के मजिस्ट्रेट थोर्नहिल के पास आया। उसने आगरा से सिपाहियों की एक टुकड़ी खजाना ले जाने के लिए बुलवाई। 31 मई को बरेली की सेना तथा जनता ने विद्रोह कर दिया था। 23 मई को सहारनपुर जिले के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट एडवर्डसन ने लिखा था कि आस-पास की जनता उस पर हमला करने के लिए तैयार बैठी है। फतहपुर तथा बांदा के अफसरों ने भी जनता के विद्रोही होने की सूचना दी थी। इलाहाबाद के किसान विद्रोह पर उतर पड़े थे। उन्होंने नीलाम हुई अपनी जमीनों को छीन लिया था। आजमगढ़ के विद्रोही सिपाहियों ने अंग्रेजों को खजाना ले जाने से रोका था, बनारस में क्रांति हुई, पर सिपाहियों ने अंग्रेज अफसर बनट के प्राण बचाए थे। 8 जून को फजाबाद क्रांति की लपटों में आ गया, लेकिन श्रीमती मिल नाम की अंग्रेज महिला अकेली चली, गांव की स्त्रियों ने उनकी आव भगत की, किसी विद्रोही ने उनसे हाथ तक नहीं लगाया। गोरखपुर से लेनोक्स परिवार अकेला चला तो विद्रोही नेता मुहम्मद हसन ने उसके प्राणों की रक्षा की। अवध के विद्रोही लोगों के व्यवहार की तारीफ करते हुए फौरेस्ट ने लिखा था— उन्होंने अंग्रेजों के साथ दयालुता का व्यवहार किया था।'

बदायूं तथा फरुखाबाद के जिलों में जून के अन्त तक समूची जनता विद्रोही हो गई। के० ने लिखा है कि झांसी तथा आगरा के पूरे जिले विद्रोही हो गये हैं। पटना विद्रोह का मुख्य केन्द्र था। पंजाब, बुन्देलखण्ड, अवध और बिहार की जनता विद्रोही हो गई थी। स्यालकोट से विद्रोही सेना चली नीमच पलटनें उमड़ पड़ीं, नसीराबाद की पलटन विद्रोही हो गई।

राजस्थान की जनता को अंग्रेजो पर विश्वास नही रहा था। नसीराबाद के विद्रोह को दबाने के लिए जोधपुर से एक टुकडी भेजी गई, वह भी विद्रोही हो गई। अजमेर कोटा इदौर की छावनियो पर आक्रमण हुए। कराची की सेना भी विद्रोही हो गई थी।

कोल्हापुर मे दिसम्बर मे विद्रोह हुआ अंग्रेजो ने 36 आदमियो को फासिया दे दी। सतारा मे रगोबा पोजी ने विद्रोह कर दिया। चटगाव की देशी सेना ने नवम्बर मे विद्रोह कर दिया। नवम्बर मे ही ढाका की सेना ने विद्रोह किया, वह जलपाई गुडी की ओर बढी, अंग्रेजो ने लाख कोशिशे की उनको दबाने की, पर वे जगलो मे फैल गये। कहने का मतलब यह है कि पूरे देश की जनता अंग्रेजो को भारत से भगा देने पर उतारू हो गई थी।

विद्रोही सिपाहियो ने 11 मई से 25 मई 1857 का समय दिल्ली शहर की व्यवस्था मे लगाया। नसीराबाद की मगजीन से उनको बदूकें तो मिली, पर बारूद नही मिल पाई थी। नीमच और बरेली की सेनाए अभी दिल्ली नही पहुच पाई थी। मेरठ और दिल्ली की सेनाए ही नगर की रक्षा कर रही थी। दिल्ली को लेने के लिए एक ओर से बनार्ड और दूसरी ओर से बिलसन बढ रहा था। देशी सिपाहियो की कोशिशे थी कि दोनो की सेनाए आपस मे न मिल पाये, लेकिन वे मिल गइ, हालाकि भारतीय सिपाहियो ने अंग्रेजो को दिखा दिया कि भारतीय कितने देश भक्त तथा वीर होते है।

उस समय दिल्ली मे अहसनुल्ला खा तथा मिर्जा इलाहीबख्श जैसे अंग्रेजो के जासूस थे, तो ऐसी वीर हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रिया भी थी, जो अंग्रेजो का सफाया करने मे पुरुषो से आगे थी। बिलसन तथा ग्रेटहेड का आगे बढने मे पल पल पर कठिनाई हो रही थी। दिल्ली पर अधिकार करने के बाद, अंग्रेजो ने जिस नीचता का परिचय दिया, उसकी मिशाल शायद ही कही मिले। बादशाह के तीन शाहजादो को होडसन ने गोली मार दी, बहादुरशाह को टूटी बैलगाडी मे बिठाकर लाया गया, टूटी खाट पर बिठाकर, उसके सामने हरम की बेगमो को बेइज्जत किया गया था, चारो तरफ मार-काट और लूट पाट की। मतको की जेबो तक को खगाला। घरो को लूटा, मन्दिर और मस्जिदो को लूटा जो मिला उसको गोली मारी, सामूहिक फासिया दी। इसके विपरीत विद्रोहियो ने अंग्रेज, स्त्रिया ही नही, पुरुषो को भी बचाया।

जिस समय दिल्ली को फिर से हथियाने के प्रयास मे अंग्रेज जान की बाजी लगा रहे थे, उस समय राजा नाहरसिह ने एक महान् देश भक्त की भूमिका अदा की थी।

## राजा नाहर सिंह और उनका देशभक्ति पूर्ण काय

नाहर सिंह एक ओर बहादुर शाह जफर की हिफाजत म लगा रहा, दूसरी आर अग्रेजो को परेशान करने वाले युद्ध की रचना करता रहा। जब अग्रजा को बल्लभ गढ नरश के साहसी किन्तु विरोधी कारनामो का पता चला ता भौचक्का रह गए। जाट वीर नाहर सिंह की प्रवल देशभक्ति और प्रचण्ड युद्ध कला से वे सचमुच घबरा गए। अग्रजा को इस छोटे से जाट राज्य की अजय शक्ति का पता ही नही था बल्लभगढ और मुगलो के सम्बन्धो की जानकारी भी अग्रेजो का नही थी।

नाहर सिंह न मुगला से मित्रता को निभाया और बुरे वक्त म निभाया। दिल्ली म मुगल शासन अतिम सासे ले रहा था। उसकी जड हिल रही थी। उनम दम-खम नही रह गया था। इन परेशान हाल मुगला का सहारा दिया जाट वीर नाहर सिंह न। मित्रता के नाते राजा नाहर सिंह न उनका उत्तरदायित्व भी अपने कधो पर ले लिया। रसद सुरक्षा और आतरिक व्यवस्था की बागडोर युवा नरश नाहर सिंह ने सभाल ली। दिल्ली दरबार म राजा नाहर सिंह का सम्राट के समीप सोने की कुर्सी मिलती थी। कहने की जरूरत नही है कि युवा नरश नाहर सिंह का दिल्ली दरबार म बहुत सम्मान होता था। सकट की घडी म दिल्ली दरबार का एक मात्र सहायक राजा नाहर सिंह ही था। यदि नाहर सिंह मित्रता न निभाता ता मुगल सम्राट और उनका परिवार लालकिले मे भूखा-प्यासा ही मर जाता। राजा नाहर सिंह के प्रयास के बावजूद दिल्ली म मुगलो का शासन कमजोर पडता गया और अग्रेजा की पकड जकड मजबूत होती गइ। राजा नाहर सिंह न स्थिति का भाप लिया और वे सतक हो उठे। उन्होन रणनीति बदली। अब केवल सुरक्षा और प्रशासन का प्रश्न नही था। अब अग्रजा पर आक्रमण करने और सनिक सगठन को मजबूत बनाने की जिम्मेदारी उन पर आ गई। उन्होन दिन देखा न रात—धुआधार दौड धूप की। और मजबूत किस्म का सैन्य सगठन खडा किया। इस रणनीति को सफल बनाने के लिए उन्हान यूरापीय कप्तानो को अपनी सना म उन्नत पदो पर नियुक्त किया। श्री पीयरसन को दिल्ली म बल्लभगढ राज्य का रैजीडेंट नियुक्त किया गया। बल्लभगढ की सेना का आधुनिक हथियारो से लैस किया गया और प्रशिक्षण की अच्छी व्यवस्था की गई।

युवा नरेश नाहर सिंह के नतृत्व मे उसकी सुनियोजित राजनीति सफल हुई। 16 मई 1857 को दिल्ली अग्रेजा के चगुल से मुक्त हो गई। राजा नाहर सिंह की सना दिल्ली की पूर्वी सीमा पर तनात हुई। मुगल सम्राट का सहायता के लिए 15,000 रुहेला की सुसज्जित सेना लेकर मुहम्मद बख्त खा दिल्ली आ चुका था

उन्होंने भी राजा नाहर सिंह की रणनीति को स्वीकार किया और उन्हें पूर्वी सीमा पर ही तैनात रहने की रजामन्दी दी। दिल्ली की सुरक्षा के लिए राजा नाहर सिंह पर ही मुगल सम्राट आश्रित हो गए। सम्राट बहादुर शाह जफर भी अपनी दाहिनी भुजा जाट वीर नाहर सिंह को ही मानते थे।

अंग्रेजों के आधिपत्य से आजाद दिल्ली के 134 दिन का इतिहास युवा नरेश नाहर सिंह के परिश्रम प्रशासन और कौशल का इतिहास है। राजा नाहर सिंह ने आन्तरिक व्यवस्था को शान्तिपूर्ण बनाए रखा और मोर्चाबंदी को मजबूत बनाने के प्रयत्न किए। उन्होंने दिल्ली से लेकर बल्लभगढ़ तक सैनिक चौकियां स्थापित कीं। उनकी सुरक्षा को चुस्त और मजबूत बनाया। उन्होंने गुप्तचरों के दस्ते का भी इस क्षेत्र में जाल बिछा दिया। सूचनाओं के आधार पर सैन्य-संगठन को और मजबूत बनाते गए। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज सेना पूर्व की ओर से दिल्ली में प्रवेश न पा सकी। युवा नरेश नाहर की मुस्तैदी और मजबूत मोर्चाबंदी से अंग्रेज पस्त हो गए। और सर जॉन लारेंस ने पूर्व दिशा से दिल्ली पर हमला करने की योजना को त्याग दिया। सर जॉन लारेंस ने लार्ड केनिंग को अपने एक पत्र में लिखा — 'पूर्व और दक्षिण दिशा में बल्लभगढ़ के नाहर सिंह की मजबूत मोर्चाबंदी है। उस सुदृढ़ सैनिक दीवार को तोड़ना तब तक असंभव प्रतीत होता है जब तक चीन और इंगलैंड से हमारी कुमुक नहीं आ जाती।"

सर जॉन लारेंस की बात सही निकली, 13 सितंबर 1857 को जब अंग्रेजी सेना का दिल्ली पर आक्रमण हुआ तब वह कश्मीरी गेट की ओर से ही किया गया। जैसे ही अंग्रेजों ने शहर में प्रवेश किया, अधिकांश भारतीय सैनिक तितर बितर होने लगे। राजा नाहर सिंह ने कई अवसरों पर मुगल शासकों और उनके सेना-अधिकारियों को सचेत किया था कि शहर में किसी भी ओर से अंग्रेजों के प्रवेश को रोकने के लिए सावधान रहना चाहिए। लेकिन मुगल शासन और सैनिक दोनों ही मात खा गए। इस अनहोनी और आकस्मिक अंग्रेजी चाल के आगे भारतीय सैनिकों में भगदड़ मच गई। सुरक्षा और व्यवस्था का ख्याल कौन करता। यहां तक कि सम्राट बहादुर शाह जफर भी हुमायूं के मकबरे में आ छिपे। मुगल दरबार ने जान बचाकर भागने की दिशा भी पूर्व द्वार ही चुनी क्योंकि उनको विश्वास था कि बल्लभगढ़ नरेश नाहर सिंह की मोर्चाबंदी में ही वे सुरक्षित रह सकेंगे।

अंग्रेजों का आतंक बढ़ता गया। राजा नाहर सिंह ने सम्राट जफर को बल्लभगढ़ के किले में आने का निमंत्रण दिया। सम्राट बहादुर शाह जफर चलने को तैयार भी थे लेकिन इलाही बख्श नामक अंग्रेज एजेंट के बहकावे में वे हुमायूं के मकबरे में ही रह गए। राजा नाहर सिंह के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का यह नतीजा निकला कि 21 सितम्बर 1857 को कप्तान हाडसन ने चुपचाप

बहादुर शाह जफर को गिरफ्तार कर लिया। युवा नरेश नाहर सिंह ने तुरंत हुमायू के मकबर की मजबूत घेराबंदी कर दी। अंग्रेज फौज को राजा नाहर सिंह के घेरे में पाकर कप्तान हाडसन ने क्रूरता की चाल चली। संकट की नजाकत को समझते हुए उसने शहजादों को गोली से भून दिया। और बाआवाज बुलन्द ऐलान किया कि यदि अंग्रेज फौजों की घेराबंदी नहीं हटाई गई तो बादशाह जफर को भी मौत के घाट उतार दिया जायेगा। राजा नाहर सिंह ने भी अवसर की अहमियत को समझ लिया और सम्राट की प्राण रक्षा की दृष्टि से घेराबंदी को हटा लिया। यही मुगलकालीन दिल्ली दरबार का अंतिम अध्याय कहा जाता है।

अंग्रेजी फौज जश्न मना रही थी। दिल्ली विजय की खुशी में झूम रही थी। तभी अंग्रेजों को पता चला कि आगरा की ओर से आने वाली पलटनों का सफाया हो गया है। इस समाचार से रंग में भंग पड़ गया। दिल्ली दरबार के पतन का प्रभाव तो होना चाहिए था कि राजा नाहरसिंह भी बल्लभगढ़ में शान्त बैठ जाता। मगर उसकी धमनियों में जाट वीर का रक्त प्रवहमान था। वह दिल्ली से लौटकर बल्लभगढ़ किले में आया और अपने सैनिक संगठन को और मजबूत बनाने में दिन रात मेहनत करने लगा। आसपास किसी भी गोरी पलटन की सूचना मिलते ही उस पर टूट पड़ते और उसका सफाया कर देते। अंग्रेजों ने जाट योद्धा नाहर सिंह के रण-कौशल और सैन्य-बल का अंदाजा लगा लिया। अन्त उन्होंने दिल्ली विजय की नई योजना बनाई। कहते हैं कि प्रेम और युद्ध में सब जायज होता है। धोखा, छल, कपट के सम्मुख सत्यशील वीर को पराजय का मुंह देखना पड़ता है। ऐसा ही हुआ, दिल्ली की तरफ से अंग्रेज घुड़सवार आए। रण क्षेत्र में उन्होंने संधि-सूचक सफेद झंडा दिखाया और राजा से प्रार्थना की कि सम्राट बहादुर शाह जफर से संधि निश्चित हो गई है। उसमें आपकी उपस्थिति आवश्यक है। यह सम्राट बहादुर शाह जफर की भी इच्छा है और अंग्रेज भी आपके साथ दोस्ताना ताल्लुकात रखना चाहते हैं।

युवा नरेश नाहरसिंह का निर्मल मन था। भोला भंडारी जाट वीर जो ठहरा। अंग्रेजों की चाल में फंस गया। कहते हैं अंग्रेज किसी मुगल सैनिक अधिकारी को अपने साथ लाये थे। उस अधिकारी की गवाही और समर्थन ने नाहर सिंह को अंग्रेजों की चाल में फंसने का अवसर दे दिया। राजा नाहर सिंह ने अपने पांच सौ सैनिकों के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। अंग्रेजों की कूटनीति ने दोतरफा आक्रमण किया। जैसे ही राजा नाहर सिंह ने दिल्ली में प्रवेश किया उनकी छिपी हुई अंग्रेज फौज ने उन पर हमला किया और धोखे से उनको बंदी बना लिया। उसके पांच सौ वीर सैनिकों को भी गोलियों से उड़ा दिया और उधर दूसरे ही दिन बल्लभगढ़ के किले पर भी आक्रमण बोल दिया और अंग्रेजों ने स

कुछ वारूद की भेंट कर लिया। राँध सदश ही बल्लभगढ़ का अभिशाप हो गया। बल्लभगढ़ में किले में गोला बारूद और रसद की कमी नहीं थी, इस सामग्री से वर्षों तक युद्ध चलाया जा सकता था, लेकिन उस दुर्ग के वीर सेनापति युवा नरेश के बिना कब तक लड़ा जा सकता था। बल्लभगढ़ की आन बान शान तो ढह गई लेकिन उसके सपूत के चरित्र बल का गगा सा पावन और हिमालय सा उन्नत बना दिया।

युवा नरेश नाहर सिंह स्वाभिमानी, साहसी और परम देश भक्त था। कोई भी प्रलोभन उनके चरित्र को दागदार नहीं बना सकता था।

दिल्ली में अंग्रेजों की विजय दुदुभी बज उठी। कहीं कोई उनका विरोधी नजर नहीं आता था। जिन विरोधियों को उन्होंने बंदी बना लिया था, उन्हें फांसी लगा दी गई थी या गोली से मार दिया गया था। दिल्ली में श्मशान की-सी शांति व्याप्त थी। राजा नाहरसिंह को वे सब दृश्य दिखाए गए। डर बैठाने के अनेक प्रयत्न किए गए, लेकिन उस वीर सेनानी ने अंग्रेजों के किसी सुझाव को स्वीकार नहीं किया। अंग्रेज अधिकारी राजा नाहर सिंह से मित्रता चाहते थे लेकिन इस शर्त पर कि वह झुककर अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ले। उस जाट वीर नाहर सिंह ने अपना जीवन उच्च आदर्श और मानव मूल्यों के उत्तम लक्ष्य के लिए समर्पित कर दिया था। उसे मायावी लोभ लालच कब नीचे गिरा सकते थे? यही होता है जाट वीरों के चरित्र का कमाल। वे व्यक्ति की पूजा नहीं करते। स्वार्थ हित पर मक्खियों की तरह मंडराते नहीं हैं। यदि कोई जाट ऐसा करता है तो समझ लिया जाए कि उसकी धमनियों में जाट का खून नहीं किसी अन्य का दौड़ता है। जाट हमेशा ही जीवन के परम उद्देश्य के लिए मर मिटना आसान समझते हैं। उद्देश्य प्राप्ति में सफलता और विफलता की भी उन्हें चिंता नहीं रहती। चिंता एक तरह से रहती ही नहीं और अगर रहती भी है तो इंसानियत के नामों में कलंक दिखाने की। ऐसे ही उज्ज्वल भावों और प्रखर विचारों से परिपूर्ण था राजा नाहरसिंह का प्रभावकारी व्यक्तित्व।

अंग्रेज अधिकारी हडसन ने राजा नाहर सिंह से कहा 'तुम थोड़ा झुक जाओ। अंग्रेज तुम्हें तुम्हारा राज्य लौटा देंगे।' जानते हो उस समय उस जाट वीर नरेश ने क्या कहा? सुनो— अंग्रेजो तुम हमारे शत्रु हो। शत्रु से क्षमा मांगना इस देश का दस्तूर नहीं है। मैं और तुम जैसे धोखेबाज कपटी लोगों के सामने झुकूंगा। यह कभी संभव नहीं है। आज एक नाहर सिंह मरेगा, कल हजारों नाहर सिंह इस देश में पैदा होंगे। तुम इस देश को गुलाम बनाकर नहीं रख सकोगे।' बहादुरी के ये बोल देर तक उस वातावरण में गूंजते रहेंगे। शब्द शब्द में स्वाभिमान, शक्ति और संकल्प की साधना सिद्ध हो रही थी। उसी समय अंग्रेजों में मंत्रणा हो रही

थी कि राजा को ठिकाने कस लगाया जाए। अंग्रेजों की हिम्मत नहीं [illegible] कि राजा नाहर सिंह को फांसी पर लटका दे। व जाता म भी सोच [illegible] । [illegible] भय था कि किसी आकस्मिक निर्णायक युद्ध में न उलझना पड जाए।

अंग्रेजों ने फैसला किया कि राजा नाहर सिंह की शक्ति, स्वाभिमान और लोकप्रियता को देखते हुए उन्हें जीवित रखना अंग्रेजी राज्य के हित में नहीं है। राजा को फांसी देना तय हो गया। फांसी देने में भी अंग्रेजों ने छल बल से काम लिया। कारणों का उल्लेख करना यहां इतना लाभप्रद नहीं जितना यह जानना कि अंग्रेज जानते थे कि हिन्दू राजा का वध नहीं किया जा सकता। वे यह भी मानते थे कि यदि लोगों को इस तथ्य का पता चल गया तो कोई नया हंगामा खड़ा हो सकता है। अतः उन्होंने ऐलान किया कि नाहर खां को फांसी दी जाएगी।

चांदनी चौक में वर्तमान फव्वारे के समीप ही राजा नाहर सिंह का दिल्ली स्थित आवास गृह था। इसी स्थान पर उनको खुलेआम फांसी देने की व्यवस्था की गई। दिल्ली की जनता को कानोकान असली सूचना भी मिल गई थी। जिस जनता ने राजा नाहर सिंह को अपनी सुरक्षा का देवता स्वीकार किया था, आज उसी राजा की प्रतीक्षा में बड़ी संख्या में शोकाकुल वदन झुकाए खड़े थे। राजा के अंतिम दर्शन की अभिलाषा लिये संकल्पों के सपने गढ़ रहे थे। वह वीर सेनानी अपने तीन साथियों के साथ फांसी के तख्ते के करीब आया। उसके अन्य विश्वस्त साथी थे—खुशहालसिंह, गुलाबसिंह और भूरासिंह। वे भी बल्लभगढ़ के ही जाट वीर थे। इन चारों देशभक्तों को अपने ही देश में फांसी के तख्ते पर झूलना पड़ा।

फांसी से पूर्व राजा नाहरसिंह का युवा मुख मंडल दामिनी की तरह दमक रहा था। उदासी का कोई निशान न था। मुख तेज तीव्रतर हो रहा था। मानो स्वाधीनता के सूरज की किरणें नये इतिहास के आलोक बीज बो रही हों। जब फांसी की घड़ी आई तो हडसन ने सिर झुकाकर राजा से उनकी अंतिम इच्छा जाननी चाही। उस युवा वीर की वीर वाणी से शब्द झरे—"तुमसे मुझे कुछ नहीं मांगना। परन्तु इन देशवासी दर्शकों को मेरा यह संदेश दे दो कि जो क्रांति की चिंगारी मैं आप लोगों के लिए छोड़े जा रहा हूं उसे बुझने न देना। देश का सम्मान अब आपके हाथ में है।" मौन दर्शकों ने उनके संदेश को मौन स्वीकृति दी। हडसन भी चिन्तातुर सोचता ही रह गया। बल्लभगढ़ ढह गया लेकिन राजा नाहर सिंह के बलिदान का सूरज अमर हो गया।

कहते हैं यह दिन उनकी बत्तीसवीं वर्ष गांठ का दिन था। बलिदान वेदी पर उस युवा नेतृत्व ने जो संकल्प किया था, वह साकार हुआ लेकिन दुर्भाग्य इस देश

की नई पीढ़ी को कि हरियाणा तक की पाठ्यपुस्तकों में इस वीर योद्धा का जीवन चरित्र उपलब्ध नहीं है। किस षड्यन्त्र का प्रतिफल है, बताने की आवश्यकता नहीं? प्रत्येक पाठक स्वयं समझता है। हम भी समझें और जाट वीर को श्रद्धांजलि स्व कभी-कभार बल्लभगढ़ के दर्शन करें। बल्लभगढ़ हमारे जातीय गौरव का स्मारक है, प्रेरणा का शिलालेख है।

झझा तूफानो न जिसकी दृढता का लोहा माना।
देश प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना॥

जिन्हे देखकर स्वय नाश भय से कातर हो जाता।
जिनके आगे पशुता का सिर झुकता—छल दह जाता॥
करता था उपहास प्रति चरण जिनका दण्ड दमन का।
डरते थे तूफान—न जिनसे पशुबल होड लगाता॥
चलो करें हम उनकी ज्वाला का फिर से आवाहन।
उनकी सुधि की ज्योति जगाए करें उन्ही का वन्दन॥

उन प्रणवीरो की बलि को जीवन त्योहार बनाना।
देश प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना॥

जग करता आह्वान वारुणी का वे विष अपनाते।
दुनिया सुख की भीख मागती वे सर्वस्व लुटाते॥
रहती उनमे शक्ति धरा का वैभव ठुकराने की।
मिट्टी का लघु गात लिये वे लपटो मे लहराते॥
आततायियो को विचलित करती उनकी हुकारें।
प्राण फूकती चलती मुर्दो मे उनकी ललकारें॥

समय सिन्धु ने इन बहते शूलो का शासन माना।
देश प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना॥

इन मीनारो की नीवो मे उनकी लाशें सोई।
नेतत्वो की जमे गयी उनके लोहू से धोई॥
आजादी का भवन उठ रहा उनके उत्सर्गो पर।
जिनकी डट इट मे उनकी कुचली साधें खोइ॥
आज चलो हम उनके घर पर साध्य प्रदीप जलायें।
उनके खू से सिचे पथो पर गलियो पर मडरायें॥

पूरा हुआ न अभी हमारा प्रतिहिसा का बाना।
देश प्रेम के ओ मतवालो! उनको भूल न जाना॥

(प्रदीप से साभार)

महात्मा गांधी ने भी उनके नामों के पीछे छिपी देशभक्ति और समृद्ध भारत की भावी परिकल्पना को नहीं देखा। क्या इसलिए उनके पिस्तौल से चला गोली का, एक स्वर बन्द था और उससे मारे गए चंद अंग्रेज थे। उन अंग्रेजों की जिन्होंने 1857 की आजादी की पहली लड़ाई में लाखों बेकसूरों को गोली से भून दिया था, लाखों को फांसी पर चढ़ाया था, लूट-पाट और बलात्कार का नया कीर्तिमान स्थापित किया था और हजारों देशभक्तों से अपने देश में रहने का अधिकार छीनकर अंडमान की जेलों में सड़ाया था अथवा विदेशों में भटकने के लिए मजबूर कर दिया था।

अंग्रेज शासकों की तरह, गांधी जी तथा कांग्रेस को भी भगतसिंह तथा अन्य क्रांतिकारी आतंकवादी दिखाई पड़े थे, कातिल नजर आये थे, लेकिन इस देश की करोड़ों जनसंख्या की नजरों में वह देशभक्त थे और उनकी देशभक्ति न गांधीजी से कम थी और न भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के किसी भी बड़े से बड़े नेता से कम। यह भी एक आश्चर्य ही है कि राष्ट्र पिता जिनको आतंकवादी मानता था, उसी को देश की जनता, उसी की अनुयायी जनता, महान देशभक्त तथा अमर शहीद मानती थी और आज भी मानती है। यही नहीं, एक समय ऐसा भी आ सकता है, जब इस देश का तटस्थ इतिहासकार यह कहने लगे कि महात्मा गांधी तथा कांग्रेस की अपेक्षा भारत के भावी लोकतंत्र के स्वरूप की तसवीर, सरदार भगतसिंह की अधिक स्पष्ट थी और यह सम्भव हो सकता है कि भावी इतिहास लेखक इस नतीजे पर पहुंचे कि अगर भारत में आजादी सरदार भगतसिंह के क्रांतिकारी रास्ते पर चलकर आई होती तो देश का भविष्य अधिक उज्ज्वल हुआ होता। उस स्थिति में, रूस, चीन तथा वियतनाम के समान भारत भी अधिक सशक्त, समृद्ध और मजबूत हुआ होता। वह भारत आज के भारत से भिन्न और शक्तिशाली होता। वह अधिक अच्छा लोकतंत्र तथा अधिक नैतिक एवं देशभक्त नागरिकों का देश होता। आज इस देश के अधिकांश लोग यह मान चुके हैं और मेरा विश्वास है कि आगे आने वाले समय में और भी अधिक मानने लगेंगे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर देशी पूंजीवादी तत्व शुरू से ही अपना प्रभाव जमाने के प्रयास में थे और गांधी जी की अहिंसा उनके लिए एक कवच का काम कर रही थी। देशी पूंजीवादी तत्व नहीं चाहते थे कि अंग्रेज, क्रांतिकारी आंदोलन के परिणामस्वरूप, इस देश से जायं। वे नहीं चाहते थे कि भारत में रूस की सी क्रांति हो। ऐसी क्रान्ति में उनको अपने अस्तित्व की समाप्ति का डर था और इस डर से बचाव गांधी जी ही कर सकते थे। फलतः गांधी जी और उनकी कांग्रेस को ये क्रांतिकारी आतंकवादी दिखाई पड़े और बर्बर अंग्रेज कौम दया की पात्र प्रतीत हुई। यह दुर्भाग्य तो है ही, साथ में निहायत संकीर्ण दलगत एकांगी विचार भी है।

शहीदों की कब्र पर हर बरस लगेंगे मेले
वतन पर मरने वालों का यही नामो निशां होगा।

भारत के सबसे अग्रणी सरदार भगतसिंह का जन्म लायलपुर जिले के बंगा नामक गांव में 28 सितम्बर 1907 को हुआ था। उसी दिन इनके पिता किशनसिंह तथा चाचा सरदार स्वर्णसिंह देशभक्ति के आन्दोलन में सजा काटकर घर लौटे थे और इसी दिन इनके चाचा सरदार अजीतसिंह के निर्वासन की अवधि समाप्त होने की सूचना मिली थी। इसीलिए बालक को निहायत भाग्य-शाली माना गया था। वह बालक घर में खुशियां लेकर आया था और मात्र घर ही नहीं, सारे भारत को असीम गौरव देकर चला गया।

जिस समय वह दुनिया से विदा हुआ और जब कि देशभक्ति के कारण अंग्रेजों ने उनसे जीवित रहने का अधिकार छीन लिया था, उस समय उनकी उम्र सिर्फ तेईस वर्ष की थी। दुनिया में भारत के धर्म, दर्शन तथा संस्कृति का डंका बजा देने वाले विवेकानन्द उनतालीस वर्ष में यश की चरम सीमा पर पहुंच गए थे। ईसा मसीह तैंतीस वर्ष की आयु में ख्याति के शिखर पर आसीन हुए थे और शंकराचार्य तीस वर्ष की आयु में धर्म का सच्चा स्वरूप बता गए थे लेकिन अमर शहीद भगतसिंह सिर्फ तेईस वर्ष की आयु में देशप्रेम की वह मशाल जला गए कि सारा देश रोशन हो उठा था, लेकिन सरदार किशन के घर का दीपक हमेशा के लिए बुझ गया था। सरदार किशनसिंह का इकलौता ही क्यों, देश का लाड़ला चला गया था।

भगतसिंह की प्रारंभिक शिक्षा बंगा गांव के प्राइमरी स्कूल में हुई। पढ़ने में अच्छे थे। अक्षर बहुत बना-बना कर सुन्दर लिखते थे। अध्यापकों का मान करते थे और साथियों के साथ हमदर्दी रखते थे। वह इतने शिष्ट तथा सुहावने थे कि बड़े बच्चे उनको कन्धों पर बिठाकर घुमाते थे। उन बच्चों को उस समय पता नहीं था कि यह बालक एक दिन, भारतीयों के दिलों पर राज करेगा और देश-भक्तों में उसकी गिनती सर्वोच्च स्थान पर होगी। तीसरी कक्षा में पहुंचकर वह यह समझने लगे थे कि उनके एक चाचा जेल में, ब्रिटिश साम्राज्य के नौकरों की क्रूरताओं के कारण शहीद हो गए हैं, एक चाचा को आजीवन देश निकाले की सजा मिली हुई है, उनकी याद में ही उनकी चाची रात-दिन रोती रहती हैं और उनके पिता को हमेशा ही एक पैर जेल में तथा दूसरा घर में रखना होता है। चौथी कक्षा में पहुंचकर, वह अंग्रेजों को भारत से निकालने की बात सोचने तथा प्रतीक्षा करने लगे थे। स्पष्ट विदित होता है कि भगतसिंह की देशभक्ति न तो अनेक कांग्रेसी नेताओं के समान किसी मजबूरी का नतीजा थी, न राष्ट्रीय आन्दोलन की लहरों के सहारे शासन की कुर्सी तक पहुंचने की योजना का अंग थी। वह उनका संस्कार थी, उनकी नसों में प्रवाहित होने वाले खून के कणों का स्वभाव थी, देश को गुलाम बनाने वाली अंग्रेज कौम के प्रति स्वाभाविक विद्रोह का परिणाम थी।

सरदार भगतसिंह की देशभक्ति उन लोगों की देशभक्ति से

अंग्रेजों की जेलों में इसलिए रहे कि उनके बाद शासन उनके हाथों में आयेगा। वह देशभक्ति त्याग और बलिदान के लिए थी, देश के उज्ज्वल भविष्य की चिंता के लिए थी, गद्दियों पर बैठने की योजना का प्रतीक नहीं थी।

पांचवीं कक्षा में पढ़ते हुए, वह गदर पार्टी के शहीदों के मुकदमों की खबरों से आ दोलित होने लग गए थे। पांचवें दर्जे के विद्यार्थी के लिए देशभक्ति की इतनी गहराई में उतर जाना सचमुच ही एक आश्चर्य है। दुनिया के इतिहास में इसकी मिसाल शायद ही कहीं मिल सके। जिस बच्चे ने, ढाई वर्ष की आयु में बंदूकों की फसल इसलिए उगाने की बात सोची थी कि उनसे वह अंग्रेजों को मार भगायेंगे, उसी से इतनी अधिक देशभक्ति की अपेक्षा की जा सकती है।

13 अप्रैल सन् 1919 को जलियांवाला काण्ड हो गया था। भगतसिंह गुस्से में उबल पड़े। वह जलियांवाला बाग गए। वहां की मिट्टी लाये और देशवासियों के खून से सनी मिट्टी पर वर्षों तक फूल चढ़ाते रहे। सन 1921 आ गया था। सारा देश अंग्रेज विरोधी आन्दोलन में डूबा था। उस समय भगतसिंह नवीं कक्षा में डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ते थे। वह तय कर चुके थे कि स्कूल छोड़कर आजादी के आंदोलन में शामिल होंगे। अपने निश्चय की सूचना, स्वयं पिताजी को मास्टर जयचन्द गुप्त द्वारा उनको दिलवाई। पिताजी स्वयं आंदोलनकारी थे। उनको कोई आपत्ति नहीं थी। फिर भी भगतसिंह संकोच कर गए थे।

वह विदेशी वस्तु के बहिष्कार आंदोलन का समय था। भगतसिंह लड़कों की टोली बनाकर विदेशी वस्त्र इकट्ठे करते फिर किसी चौराहे पर रखकर उनकी होली जलाते। उनकी व्यवहार पटुता और विनम्रता के कारण उनको विदेशी कपड़े भी ढेरों मिलते। आन्दोलन बड़ी तेजी पर था। तभी 5 फरवरी 1922 को गोरखपुर जिले के चौराचौरी गांव में काण्ड हो गया। कांग्रेस के जलूस के समय उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दी जिसमें एक थानेदार तथा 21 सिपाही जल गए थे। इसी प्रकार के काण्ड बम्बई में 17 नवम्बर 1921 तथा मद्रास मे 13 जनवरी 1922 को हो गए थे। अतः गांधीजी ने आन्दोलन को वापस ले लिया। आन्दोलन वापस लेने का प्रस्ताव 12 फरवरी 1922 को बारडोली में होने वाली मीटिंग में लिया गया था। समस्त देश में गांधीजी के इस कार्य का विरोध हुआ। पंडित मोतीलाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय ने भी इस प्रस्ताव पर तीखी नाराजगी व्यक्त की पर बाद में वे गांधीजी के सामने झुक गए। लेकिन भगतसिंह का क्रांतिकारी गांधीजी से सहमत न हो सका। उनके सामने आदर्श था गदरपार्टी के नेताओं का विशेषतः करतारसिंह सराबा का जिसने जज के मुंह में फांसी की सजा सुनकर 'धन्यवाद' कहा था और दूसरे साथी ने काला पानी की सजा मिलने पर फांसी की सजा देने के लिए जज से प्रार्थना की

थी।

अब भगतसिंह नेशनल कालिज म थ। असहयोग आ दोलन म वह नवी वक्षा से पढाई छोड चुके थे, फिर भी उनकी योग्यता, देशभक्ति और सामान्य-ज्ञान की अधिकता को देखकर भाई परमानन्द की कृपा से उनको कालिज के प्रथम वष म दाखिला मिल गया था और दो माह का समय उनका पिछली पढाई का पूरा करन के लिए दिया गया था। इसको वह जल्दी ही पूरा कर सके थे।

कालिज के पाठ्यक्रम म रौलेट-कमेटी रिपोट तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास भी था। असल म अब जयचन्द्र विद्यालकार क सम्पक म उनकी असली पढाई प्रारम्भ हुई। जयचन्द्र विद्यालकार क्रान्तिकारी विचारधारा के थ और बगाल के क्रान्तिकारियो के साथ उनक सम्बन्ध थ। लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित दुर्गादास पुस्तकालय क्रान्तिकारी साहित्य का केन्द्र था। उनके अध्यक्ष राजाराम शास्त्री थे, जो बाद मे मजदूर नेता बनकर उभरे और यू० पी० की सरकार मे भी रहे। यहा बहस के दौरान भगतसिंह क्रान्ति, आतक और आत्म-बलिदान के द्वारा प्रचार के पक्ष म बोलने लगे थ। 'बहरो को सुनाने के लिए ऊची आवाज की जरूरत होती है, अराजकतावादियो के य शब्द उनको प्रभावित करने लग गए थे।

एक दिन प्रो० जयचन्द्र विद्यालकार क घर बगाल के विख्यात क्रान्तिकारी शचीन्द्र नाथ सान्याल से उनकी भेंट हो गई और यह भगतसिंह के जीवन का नया दिन सिद्ध हुआ। क्रान्तिकारियो क साथ उनके सपक कायम हुए। अब वह बाकायदा क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे। नेशनल कालिज मे राष्ट्रीय नाटक क्लब की स्थापना की गई थी। इनमे भगतसिंह राणाप्रताप, शशिगुप्त तथा चन्द्रगुप्त का अभिनय किया करते थे। एक बार उनके अभिनय को देखकर भाई परमानन्द न कहा था—'मेरा भगतसिंह सचमुच शशिगुप्त सिद्ध होगा।' पाठक जानते हैं कि शशिगुप्त ही वह व्यक्ति था जिसने भारत विजय के बाद ग्रीस लौटते हुए सिकन्दर को भारत की जीत का पाठ पढाया था। जिसने सिकन्दर की सेना का नष्ट भ्रष्ट कर दिया था और सिकन्दर को इतने घाव दे दिए थे, उनसे कराह कराहकर वह मर गया था। इस तरह शशिगुप्त देश के गौरव की रक्षा करने वाला था। भाई परमानन्द का भगतसिंह को शशिगुप्त कहना सत्य सिद्ध हुआ। देश और देश की जनता के साथ खून की होली खेलने वाले अंग्रेजो स, भगतसिंह सचमुच शशिगुप्त के समान ही बदला लेने वाले सिद्ध हुए।

सन् 1923 मे भगतसिंह एफ० ए० करके बी० ए० प्रथम वष मे पढ़ते थ। माताजी चाहती थी कि उसकी शादी कर दी जाय, भगतसिंह शादी के विरोधी थ। वह मन ही मन, मौत से अपना विवाह कर चुके थे। शादी के लिए तयार क्यो होते? लेकिन माताजी जिद् पकडी थी। सगाई का दिन निश्चित हो गया था,

लकिन वह दिन आने स पहल ही भगतसिंह फरार हो गए थ। जान स पहल पिताजी को इस आशय का पत्र लिखकर छोड दिया था—

'पूज्य पिताजी नमस्ते !

मरी जिन्दगी मकसदे आला यानी आजादी ए हिंद क उसूल क लिए वक्फ हो चुकी है। इसीलिए मरी जिंदगी म आराम और दुनियावी खाहिशात बायस कशिश नही है।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापूजी न मर यज्ञोपवीत क वक्त एलान किया था कि मुझ खिदमत वतन क लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हू।

उम्मीद है आप मुझ माफ फरमायेंगे।

आपका ताबदार
भगतसिंह

इस पत्र स भगतसिंह के इरादों की बुलन्दी और देश की आजादी के लिए बेचैनी का पता लगता है। इस फरारी क साथ ही उनकी स्कूली शिक्षा का अंत हो गया था और देश प्रेम क्रान्ति तथा समाजवाद की असली शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी।

शची द्रनाथ सान्याल क आदेश पर भगतसिंह घर स फरार होकर कानपुर आए। यहा क्रान्तिकारी सगठन का काम योगशचन्द्र चटर्जी देख रह थे। शुरू म भगतसिंह को मनीलालजी अवस्थी क घर पर रखा गया। यहा उनको श्री सुरशचन्द्र भट्टाचाय बटकेश्वर दत्त, अजय घोष और विजय कुमार सिन्हा क साथ काम करने का मौका मिला। पुलिस की नजरो म बचन क लिए वह बलवन्तसिंह के नाम से प्रताप म लिखत और सम्पादकीय विभाग म काम करत थ। यहा पुलिस की खोजबीन बढने क कारण विद्यार्थी जी न उनको जिला अलीगढ़ की तहसील खैर क गाव शादीपुर क स्कूल म हडमास्टर बनाकर भज दिया। उन्होन स्कूल को चमका दिया।

इसी बीच भगतसिंह की दादी बीमार हुई। वह भगतसिंह को देखन क लिए तड़पन लगी। सरदार किशनसिंह न भगतसिंह को बुलाने लिए एक विज्ञापन निकाला और विवाह की बात रद्द कर दी तब विद्यार्थी जी तथा मौलाना हसरत मौहानी की मध्यस्थता स वह घर लौटे। घर आकर उनको अपना नेतत्व दिखान का मौका मिला। उन दिनो अकाली आन्दोलन के सिलसिल म अकाली जत्थ ननकाना साहब जा रहे थ। इनका उद्देश्य था गोला-काण्ड तथा लाठी चार्ज का विरोध करना। इसक समथन म नाभा क महाराज रिपुदमनसिंह द्वारा कालीपट्टी बाधकर विरोध प्रकट करन क आरोप म उन
गया था। अत अकाली जत्थ ननकाना ... स्थान ... ... दिया
था)

जाने लगे। एक जत्था बंगा होकर जाने को था। भगतसिंह के खानदानी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट दिलबागसिंह नहीं चाहते थे कि बंगा में जत्थे का स्वागत किया जाय, पर सरदार किशनसिंह ने उसके स्वागत का दायित्व भगतसिंह को सौंप दिया था। निश्चित तारीख पर 13वां शहीदी जत्था आया। दिलबागसिंह तथा सरकार की मर्जी के खिलाफ भगतसिंह की पुकार पर नौजवान-साथियों ने जत्थे का जोरदार सत्कार किया। एक दिन के स्थान पर तीन दिन तक जत्था रुका। रातों रात मना दूध रोटी सब्जी तथा दूसरी चीजें इधर उधर गांवों से भगतसिंह के घर आने लगीं। उसे युवा साथी उनका जत्थे में ले जाते थे। भगतसिंह ने मोर्चा जीत लिया था। उनका डंका गूंजने लगा।

भगतसिंह के इस काम से उनके खानदानी चाचा दिलबागसिंह सख्त नाराज हुए। उनके दबाव से उनका वारण्ट निकाला गया। भगतसिंह भाग निकले। वह दिल्ली आ गए। यहां बलवन्तसिंह के नाम से 'दैनिक अर्जुन' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। कानपुर में अकाल के दौरान, पार्टी की सहायता के लिए वहां गए और वहां से फिर लाहौर आ गए। यहां नौजवान भारत सभा बनाने के काम में जुटे। साथ में भगवती चरण थे। उन दिनों, लाला लाजपतराय इंडिपेंडेण्ट कांग्रेस दल बनाकर कांग्रेस से अलग पंजाब असेम्बली का चुनाव लड़ने की तैयारी में थे। वह हिन्दू साम्प्रदायिकता के समीप पहुंच गए थे। सरदार किशनसिंह लालाजी के विरोध में थे। भगतसिंह ने यहां अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

कौमी सभा के अध्यक्ष थे—रामकिशन, जनरल सैक्रेटरी थे भगतसिंह और प्रचार मन्त्री थे भगवतीचरण। इस सभा ने गदर पार्टी के शहीद करतारसिंह सराबा का बलिदान दिवस मनाया। दुर्गाभाभी तथा सुशीला दीदी ने अपनी उंगलियां काटकर रक्त के छींटों से सराबा के चित्र का अभिषेक किया। नौजवान सभा ने अपना अत्यन्त प्रगतिशील समाजवादी विधान बनाया। उसने सन् 1926 में ही भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता की मांग रख दी, जबकि कांग्रेस ने सन् 1929 में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था। यह इस बात का प्रमाण है कि अन्य राष्ट्रीय नेताओं की तुलना में, भगतसिंह की समझ अधिक जनवादी तथा लोकतान्त्रिक थी और वह गांधीजी तथा उनकी मण्डली से अधिक सजग थे।

काकोरी षड्यन्त्र केस के नेताओं से भगतसिंह का सम्पर्क था। वह गिरफ्तारी तथा सी० आई० डी० की चिंता किए बिना अदालत में उनका मुकदमा सुनने जाते। उनको छुड़ाने की योजना बन रही थी। आगरा उन दिनों दल की गतिविधि का केन्द्र था। आजाद, भगतसिंह और विजय कुमार सिनहा आगरा में थे। कुछ दिन वह नूरी दरवाजा के मन्दिर में रहे कुछ दिन राजा मण्डी के सुन्दर होटल के कमरे में।

लेकिन वह दिन आने से पहले ही भगतसिंह फरार हो गए
पिताजी को इस आशय का पत्र लिखकर छोड दिया था

'पूज्य पिताजी नमस्ते !

मेरी जिंदगी मक्सदे आला यानी आजादी ए हिंद
हो चुकी है। इसीलिए मेरी जिंदगी म आराम और
ख्वाहिश नहीं है ।

आपको याद होगा कि जब मै छोटा था तो
वक्त एलान किया था कि मुझ खिदमत वतन के लि
लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमायेंगे।

यह समझ गया था कि जब तक भीड को न हटाया जायगा, तब तक बिना विरोध के कमीशन के सदस्य बाहर नहीं निकल सकते। अत भीड हटाने का दायित्व सहायक पुलिस अधीक्षक साण्डर्स को सौंपा गया। उसने लाठी चार्ज कराया। उसमे लालाजी को चोटें लगी जिनसे उनकी मृत्यु हो गयी। इसके एक माह बाद, स्काट को गोली से उडाने की योजना बनाई गई। योजनानुसार जयगोपाल को पुलिस थाने पर स्काट के आने की सूचना लेने भेजा गया। राजगुरु जेब में पिस्तौल डाले पैदल उधर गए। भगतसिंह और आजाद साइकिलो पर थे। योजनानुसार भगतसिंह और राजगुरु को स्काट पर गोली चलानी थी चौकी से कोई पुलिस का आदमी आए तो आजाद को उसे रोकना था। जयगोपाल से संकेत पाकर राजगुरु तथा भगतसिंह आगे बढे। साण्डर्स ने मोटर साइकिल स्टार्ट करने के लिए हैंडिल घुमाया ही था कि राजगुरु ने फायर कर दिया। साण्डर्स और मोटर साइकिल गिर पडी। भगतसिंह आगे बढे, पाच गोलिया से साण्डर्स को छलनी किया और डी० ए० वी० कालिज के अहाते से निकलकर गायब हो गए। ब्रिटिश सरकार को यह बहुत बडी चुनौती थी। जिस समय भगतसिंह और राजगुरु भाग रहे थे, पुलिस जमादार चदनसिंह उनका पीछा करने लगा। आजाद ने उसको रुकने के लिए कहा, पर वह जोश मे पीछा करता रहा। आजाद के माउजर से गोली चली और उसका ढेर हो गया।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना का नोटिस निकला, नौकरशाही को सावधान किया गया, साण्डर्स की मृत्यु से लालाजी के अपमान का बदला ले लिया गया। इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे के साथ बलराज के हस्ताक्षर से पोस्टर बाट दिए गए। उस समय दल के लगभग सभी सदस्य लाहौर मे थे। साण्डर्स के वध के बाद अधिकाश सदस्य निकल गए थे। पर समस्या भगतसिंह को बाहर निकालने की थी। इसका हल किया दुर्गा भाभी ने।

दुर्गा भाभी के पति भगवतीचरण स्वय क्रांतिकारी थे। मेरठ केस मे फरार थे। जाने से पहले वह पत्नी को 1000 रुपय दे गए थे। वे रुपए उनके पास थे। उनसे लाहौर से कलकत्ता के लिए फस्ट क्लास का कूप रिजर्व कराया गया। भगतसिंह ऊचे कालर का ओवरकोट पहने तिछा फ्लैट हैट लगाए, बाई ओर भाभी के बेटे को गोद मे लिये दुर्गा भाभी को पत्नी के रूप मे साथ लेकर पाच बजे की गाडी मे सवार हुए। बिस्तर-बन्द लेकर नौकर की तरह राजगुरु चल और कलकत्ता पहुच गए। इसी ट्रेन से रामनामी दुपट्टा ओढे माथे पर तिलक लगाए, हरिनाम जपते मथुरा के पण्डा बन आजाद यात्रा कर रहे थे। आजाद तथा राजगुरु लखनऊ पर उतर गए। भगतसिंह तथा दुर्गा भाभी भी प्लेट फार्म पर उतरी वहा से वहा सुशीला को तार दिया—भाई साहब के साथ आ रही हू। कलकत्ता पहुंचने पर सुशीला दीदी तथा भगवती चरण ने स्टेशन पर

## पहली बार पुलिस की हिरासत में

29 जुलाई 1927 को भगतसिंह अमृतसर के स्टेशन पर गाड़ी से उतरे थे। देखभालकर स्टेशन से बाहर आए। थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि एक पुलिस वाले को पीछा करते देखा। वह तेज चले, पुलिस वाला भी तेज चला। वह दौड़ने लगे, वह भी दौड़ा। वह गलियों में छिपते हुए सरदार शार्दूलसिंह एडवोकेट की बैठक में घुस गए। एडवोकेट साहब को सब कुछ बता दिया। पिस्तौल मेज पर रख दी। एडवोकेट साहब ने पिस्तौल दराज में रखी और भगतसिंह को नाश्ते पर भेजकर बाहर घूमना शुरू कर दिया। इसी बीच पुलिस वाला भी आ गया। उसने शार्दूलसिंह से पूछा—क्या उन्होंने एक सिख युवक को इधर आते देखा है? उनका उत्तर था कोट पाजामा पहने एक युवक दौड़ता हुआ आया तो था। वह इधर गया था। सकत किसी दफ्तर की ओर था। पुलिस ने दफ्तर घेर लिया। भगतसिंह दिन भर घर में रहे और शाम को लाहौर के लिए चल दिए। ज्यों ही स्टेशन से निकलकर तांगे में बैठे वह आगे बढ़े ही थे कि गिरफ्तार कर लिए गए। उनको लाहौर के किले तथा बोस्टल जेल में रखा गया था। बाद में वह 60 हजार रुपये की जमानत पर छोड़ दिए गए। 30 हजार की जमानत बैरिस्टर दुनीचन्द ने दी और तीस की दौलत राम ने।

श्री बोधराज और डा० गोपीचंद भार्गव द्वारा पंजाब असेम्बली में सरकार पर दबाव डाले। उनका तर्क था कि यदि भगतसिंह के खिलाफ कुछ तथ्य है तो मुकद्दमा चलाओ, वरना जमानत समाप्त होने की घोषणा करो। अन्त में जमानत समाप्त हो गई। भगतसिंह स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने लगे। तथा 9 सितम्बर 1928 को दिल्ली में फीरोजशाह के खण्डहरों में क्रांतिकारियों की एक मीटिंग हुई। इसमें भगतसिंह को क्रांतिकारी आंदोलन का नेतृत्व सौंपा गया। अपने दल का नाम हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन के स्थान पर हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन, रख दिया गया। पार्टी का काम पूरा करने के लिए उनको देश में घूमना था, अतः पार्टी के निर्णय के अनुसार उन्होंने दाढ़ी तथा बाल कटा दिए। अब वह बम्ब बनाने की कोशिश में थे।

## साइमन कमीशन का विरोध और साण्डर्स वध

समूचे देश में साइमन कमीशन का विरोध हो रहा था। भारत का कोना कोना 'साइमन गो बैक' के नारों से गूंज रहा था। लाहौर में उसका विरोध करने का मुख्य दायित्व भगतसिंह पर था। वे नानाजी की भीड़ का नेतृत्व करने के लिए तैयार करके आए थे। भीड़ बढ़ती जा रही थी। पुलिस सुपरिटेंडेंट स्काट

यह समझ गया था कि जब तक भीड को न हटाया जायगा, तब तक बिना विरोध के कमीशन के सदस्य बाहर नहीं निकल सकते। अत भीड हटाने का दायित्व सहायक पुलिस अधीक्षक साण्डस को सौंपा गया। उसने लाठी चार्ज कराया। उसमे लालाजी को चोटें लगी जिनसे उनकी मृत्यु हो गयी। इसके एक माह बाद, स्काट की गोली से उडाने की योजना बनाई गई। योजनानुसार जयगोपाल को पुलिस थाने पर स्काट के आने की सूचना लाने भेजा गया। राजगुरु जेब मे पिस्तौल डाल पैदल उधर गए। भगतसिंह और आजाद साइकिलो पर थे। योजनानुसार भगतसिंह और राजगुरु को स्काट पर गोली चलानी थी, चौकी से कोई पुलिस का आदमी आए तो आजाद को उसे रोकना था। जयगोपाल से संकेत पाकर राजगुरु तथा भगतसिंह आगे बढे। साण्डस ने मोटर साइकिल स्टार्ट करने के लिए हैंडिल घुमाया ही था कि राजगुरु ने फायर कर दिया। साण्डस और मोटर साइकिल गिर पडी। भगतसिंह आगे बढे पाच गोलिया से साण्डस को छलनी किया और डी० ए० वी०कालिज के अहाते से निकलकर गायब हो गए। ब्रिटिश सरकार को यह बहुत बडी चुनौती थी। जिस समय भगतसिंह और राजगुरु भाग रहे थे, पुलिस जमादार चदनसिंह उनका पीछा करने लगा। आजाद ने उसको रुकने के लिए कहा, पर वह जोश मे पीछा करता रहा। आजाद की माउजर से गोली चली और उसका ढेर हो गया।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना का नोटिस निकला, नौकरशाही को सावधान किया गया, साण्डस की मृत्यु से लालाजी के अपमान का बदला ले लिया गया। इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे के साथ बलराज के हस्ताक्षर से पोस्टर बाट दिए गए। उस समय दल के लगभग सभी सदस्य लाहौर मे थे। साण्डस के वध के बाद अधिकाश सदस्य निकल गए थे। पर समस्या भगतसिंह को बाहर निकालने की थी। इसका हल किया दुर्गा भाभी ने।

दुर्गा भाभी के पति भगवतीचरण स्वय क्रातिकारी थे। मेरठ केस मे फरार थे। जाने से पहले वह पत्नी को 1000 रुपये दे गए थे। वे रुपए उनके पास थे। उनसे लाहौर से कलकत्ता के लिए फर्स्ट क्लास का कूपे रिजर्व कराया गया। भगतसिंह ऊचे कालर का ओवरकोट पहने, तिछा फेल्ट हैट लगाए बाइ ओर भाभी के बेटे को गोद मे लिये दुर्गा भाभी को पत्नी के रूप मे साथ लेकर पाच बजे की गाडी मे सवार हुए। बिस्तर बन्द लेकर नौकर की तरह राजगुरु चले और कलकत्ता पहुच गए। इसी ट्रेन से रामनामी दुपट्टा ओढे, माथे पर तिलक लगाए, हरिओम बोलते मथुरा के पण्डा बने आजाद यात्रा कर रहे थे। आजाद तथा राजगुरु लखनऊ पर उतर गए। भगतसिंह तथा दुर्गा भाभी भी प्लेट फार्म पर उतरी, वहा से बहन सुशीला को तार दिया—भाई साहब के साथ आ रही हू। कलकत्ता पहुचने पर सुशीला दीदी तथा भगवती चरण ने स्टेशन पर

स्वागत किया। पत्नी की इस भूमिका पर भगवतीचरण मुग्ध हो गए। भगतसिंह को सेठ छज्जूराम की तिमंजिला कोठी में रखा गया। सेठजी की पत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी को सुशीला भाभी ने सारी बात बता दी थी।

उन दिनों कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन हो रहा था। भगतसिंह बंगालियों की तरह कुर्ता, धोती तथा दुपट्टा पहने कांग्रेस पण्डाल में घूमते, नेताओं के भाषण सुनते और उनकी राजनीतिक समझ पर दुखी होते थे। कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज की बात कर रही थी। भगतसिंह पर फ्रांसीसी आतंकवादी वेला का प्रभाव था। वह कुछ करने के लिए व्यग्र हो उठे। उन्होंने लोक विरोधी दो बिलों पर बहस के दौरान असम्बली में बम्ब फेंकने का निश्चय कर लिया। अपनी योजना पर प्रफुल्लचन्द्र गांगुली से विचार विमर्श किया। उनकी मंजूरी के बाद योजना को पूरी करने पर जुट गए।

कलकत्ता में उनका नाम हरि था। जब वहां से चले तो सुशीला दीदी ने अपने रक्त से तिलक लगाया। वह आगरा आए। हींग की मण्डी तथा नाई की मण्डी में दो मकान लिए हुए थे। बम्ब बनाने का काम यहीं होता था। यहीं से वह दिल्ली आते जाते रहे और योजना की बारीकियों पर विचार करते रहे।

## दिल्ली की असेम्बली में धमाका

असम्बली में 'पब्लिक सुरक्षा बिल' तथा 'ट्रेड डिस्प्यूटस बिल' की बहस के दौरान बम्ब फेंकने का निश्चय हो गया था। योजनाचतुर आजाद समस्त योजना का अंतिम रूप दे चुके थे, लेकिन चाहते थे कि बम्ब फेंककर भाग आया जाय, जो बिल्कुल सम्भव था। बाहर आजाद मोटर लेकर तैयार रहेंगे और उनको भगाकर ले जायेंगे, किन्तु स्वयं भगतसिंह इसके विरोधी थे। वह फ्रांसीसी क्रांतिकारी वेला की भांति बम्ब के साथ साथ एक विचार जनता को देकर कुछ नया करना चाहते थे और आत्म बलिदान द्वारा देश के क्रांतिकारी आन्दोलन को सशक्त तथा स्वाधीनता-आगमन को समीप लाना चाहते थे। योजना उनकी थी, अतः उनका जाना अधिक निश्चित था दूसरे हि० स० प्र० स० के दर्शन को वही अन्यों की अपेक्षा अच्छी तरह अदालत में पेश करने की क्षमता रखते थे लेकिन दल की भावी प्रगति के लिए आवश्यक था कि उनको मौत के मुंह में जाने से बचाया जाये। अतः दल के सदस्यों ने तय किया कि बटुकेश्वरदत्त तथा विजयकुमार सिन्हा बम्ब फेंकने जायेंगे। इस निर्णय से सुखदेव बौखला उठे। वह भगतसिंह के पास गए। उनकी भर्त्सना की और कहा—इस निर्णय से इतिहास तुमको कायर कहेगा। भगतसिंह ने उनका विरोध किया पर दूसरे दिन केन्द्रीय-समिति की मीटिंग में निर्णय कराया कि बम्ब फेंकने बटुकेश्वरदत्त के

साथ वह खुद जायेंगे। इसी के साथ निश्चित हुआ कि शेष साथी दिल्ली से बाहर चले जायें। ऐसा ही हुआ।

8 अप्रैल 1929 को दोनों बिल पर सुनाई की जानी थी, उसी दिन बम्ब फेंकना तय हुआ और फेंका गया। बम्ब ऐसी जगह फेंके गए कि किसी को चोट न लगे। उनका धुआं सब जगह छा गया था, वह चाहते तो निकल सकते थे, लेकिन वहीं खड़े रहे। काफी देर बाद साजण्ट टेरी और इन्स्पेक्टर जानसन उनके पास आए। दोनों घबराए हुए थे। भगतसिंह ने भरा हुआ पिस्तौल निकालकर डेस्क पर रख दिया। वे गिरफ्तार हो गए। जब पुलिस दोनों को कोतवाली ले जा रही थी तो उन्होंने 'इन्कलाब जिंदाबाद' के नारे लगाए। 22 अप्रैल 1929 को पुलिस हवालात से जेल भेज दिया गया। बम्ब फेंकते समय उन्होंने 'फिलासफी आव बम्ब' नाम से पर्चे भी फेंके थे जो हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की नीति को बताते थे। 3 मई 1929 को सरदार किशनसिंह बरिस्टर आसफ अली के साथ दिल्ली जेल में मिले। पिताजी पूरे बचाव के साथ मुकदमा लड़ना चाहते थे, किन्तु भगतसिंह अपने बलिदान द्वारा अपने सिद्धान्तों के प्रचार का अवसर देख रहे थे।

भगतसिंह को जीवन प्रिय नहीं था, प्रिय थे अपने सिद्धान्त, उनका प्रचार और प्रचार के लिए अवसर की खोज। मौत की सजा से एक दिन पहले सुकरात का शिष्य उनके पास आया था और बोला—भाग निकलने की योजना तैयार है चलिए भाग चलें। उसने कह दिया—मेरे भाग जाने से तो मेरे सिद्धान्त झूठे पड़ जायेंगे, लोग मुझे ढोंगी कहेंगे। भगतसिंह भी इसी रास्ते पर चल रहे थे। लेकिन सुकरात जीवन देख चुके थे, भगतसिंह का अभी शैशव समाप्त ही हुआ था। अपने सिद्धान्तों के लिए उनका बलिदान दुनिया के अनेक बलिदानों से अधिक महान तथा आश्चर्यजनक था।

## जेल की अदालत मे भगतसिंह की पेशी

7 मई, सन् 1929 को जेल में एडीशनल मजिस्ट्रेट मि० पूल की अदालत लगी। सरकार ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया, लेकिन भगतसिंह ने कहा—हम अपना बयान सेशन जज की अदालत में देंगे इसलिए उनका मुकदमा सेशन जज मिडलटन की अदालत में भेज दिया गया। 4 जून 1929 को सेशन अदालत में सुनाई प्रारम्भ हुई। यहां भगतसिंह ने 6 जून 1929 को ऐतिहासिक बयान दिया (यह बयान आगे पढ़िए)। 10 जून, 1929 को मुकदमे की सुनवाई खत्म हो गई और 12 जून 1929 को, अपने 41 पृष्ठ के फैसले में जज ने दोनों को आजन्म कारावास की सजा सुना दी। इसके बाद भगतसिंह को लाहौर सैन्ट्रल जेल तथा

बटुकेश्वर दत्त को मियावली जेल म भेज दिया गया।

## हाईकोर्ट मे सुनवाई

भगतसिंह न बडा ऐतिहासिक बयान दिया। इससे उनके ज्ञान की धूम मच गई। उनके सिद्धान्त के लिए देश म व्यापक सहानुभूति पैदा हो गई। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के नौकर जजो को न तो भगतसिंह की देश भक्ति प्यारी थी और न इन्सान पर इन्सान के शोषण का विरोध अच्छा लगता था। उन्हे भगतसिंह और उनके साथियो के कार्य तथा सिद्धान्तो मे अपने साम्राज्य के लिए खतरा नजर आ रहा था। इसलिए जस्टिस फोर्ड और जस्टिस एडीसन ने सेशन अदालत का निर्णय बरकरार रखा। यह निर्णय 13 जनवरी 1930 को सुनाया गया था।

## कारावासो के अनुभवो की व्यथाभरी अनन्तगाथा से उभरता लौह पुरुष का महान् व्यक्तित्व

असम्बली बम्ब काण्ड के अभियुक्तो के रूप मे भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को योरोपीयन क्लास मे जेल मे रखा गया था जहा उनको सब प्रकार का आराम था, फिर भी उन्होने जेल मे भूख हड़ताल करने का निर्णय लिया था इसलिए कि वह अपनी मृत्यु को महगा बनाना चाहते थे। अपनी खबरो से भारतीय जनता को उद्वेलित करना चाहते थे, अपने आदर्शों की गूज को घर घर तक पहुचाना चाहते थे। साथ ही जेलो म भारतीय स्वाधीनता आदोलन मे सघर्षरत सेनानियो के साथ होने वाले अन्याय के विरोध मे आवाज उठाना चाहते थे। इसलिए 14 जून 1919 से उनकी भूख हडताल प्रारम्भ हुई। अक्तूबर 1929 के प्रथम सप्ताह तक चली। यानी दिल्ली मे लाहौर के लिए चलते हुए ही ट्रेन म भूख हडताल प्रारम्भ की जा चुकी थी। उसी ट्रेन के दूसरे डिब्बे मे बैठे पिता सरदार किशनसिंह यात्रा कर रहे थे। वह हर स्टेशन पर उनको कुछ खिलाने का प्रयास करते पर वह कुछ नही खाते। भूख हडताल प्रारम्भ करते समय उनका वजन 133 पौण्ड था, 30 जुलाई तक वह 5 पौण्ड प्रति सप्ताह कम हुआ, पर बाद मे ठहर गया।

ये लोग खाने से ही नही, पानी स भी वचित रहे क्योकि जेल अधिकारी पानी के घडो मे दूध डाल दिया करते थे, जिसको ये पीते न थे। आखिर मे ये घडा को फोडने लग गए। मजबूर होकर पानी रखा जाने लगा। यतीन्द्रनाथ को बलपूर्वक दूध दिया गया उन्होने प्रतिरोध किया उनकी हालत खराब होने लगी। तब भगतसिंह न अन्य क्रान्तिकारियो को भूख हडताल खत्म करने की

सलाह दी, लेकिन सबने भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त का साथ देने का निश्चय कर लिया था। इस निर्णय के पीछे भावना केवल यतीन्द्रनाथ की जान बचाना मात्र थी। वे दोनों ही भूख हड़ताल कायम रखेंगे। लेकिन जब यतीन्द्रनाथ ने भूख हड़ताल नहीं तोड़ी तो गवर्नर की आज्ञा से भगतसिंह को बोस्टल जेल में लाया गया। उनके कहने पर यतीन्द्रनाथ ने हड़ताल खत्म कर दी। तब उनसे जेल अधिकारियों ने पूछा 'आपने भगतसिंह का हुक्म फौरन मान लिया और दूसरों की बात नहीं मानी।' वह बोले— भगतसिंह हमारे नेता और वीर पुरुष हैं।' ऐसे थे भगतसिंह। इनके दिल में, हर भारतीय के लिए अमिट प्यार था और शोषक तत्त्वों से घृणा थी।

जेल में क्रान्तिकारियों की भूख हड़ताल को लेकर देश का वातावरण बहुत गर्म था। इसलिए सरकार ने 2 सितम्बर 1929 को जेल इन्क्वायरी कमेटी की स्थापना की। कमेटी के सदस्य जेल में आये। भगतसिंह से उनकी बातचीतें हुईं। उन्होंने वायदा किया कि अगर भूख हड़ताल खत्म कर दी जाए तो सरकार यतीन्द्रनाथ को छोड़ सकती है। भगतसिंह ने हड़ताल वापस लेने का निर्णय कर दिया, पर सरकार अपने वायदे से मुकर गई और दो दिन बाद 4 सितम्बर 1929 से फिर प्रारम्भ हो गई। 2 सितम्बर को भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त की भूख हड़ताल का 81वां दिन था और दूसरे साथियों का 53वां। फिर भी, अदालत में भगतसिंह को स्ट्रेचर पर लाया जाता। एक पुलिस वाले के हाथ के साथ उनके हाथ में हथकड़ी होती। इसका उन्होंने विरोध किया मजिस्ट्रेट श्रीकृष्ण को उन्होंने खरी-खोटी भी कही, पर उसने गुलामी का डटकर परिचय दिया। हड़तालियों की हालत खराब होती जा रही थी। 13 सितम्बर 1929 को यतीन्द्रनाथ शहीद हो गये। इससे समूचे देश का वातावरण गर्म हो उठा। सरकार परेशान हुई। उसको जेल इन्क्वायरी कमेटी की रिपोर्ट मिल गई थी। सरकार ने भगतसिंह का यह प्रस्ताव मान लिया था कि यदि उन सबको एक जगह इकट्ठा होकर हड़ताल समाप्त करने का मौका दिया जाए तो वह हड़ताल खत्म कर देंगे सरकार ने बात मान ली और फलों के रस की जगह भगतसिंह ने दाल तथा फुलकों से अनशन समाप्त किया। 5 अक्तूबर 1929 को 124वें दिन अनशन खत्म हुआ। सरकार ने उनको राजनीतिक कैदी मानकर सुविधाएं प्रदान करनी प्रारम्भ कर दी। गांधी जी के साथ इस देश का पूंजीवादी प्रेस था इसलिए उनके 21 दिन के अनशन को राष्ट्र की महान घटना बना दिया गया। भगतसिंह और उनके साथियों के साथ, न तो देश का पूंजीवादी प्रेस था और न साम्राज्यवादी विदेशी प्रेस। जूट प्रेस ने भगतसिंह के अनशन के विषय में जो कुछ लिखा था, उसके पीछे अखबार की बिक्री का भाव अधिक था, भगतसिंह के आदर्श के प्रति सहानुभूति कम। इसलिए उनकी 124 दिन की भूख हड़ताल विशेष घटना न

बन सकी।

भगतसिंह जिस समय अदालत मे आते, उस समय 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते। वन्देमातरम गीत गाते और फिर उसके बाद क्रान्तिकारी शहीदो का प्रसिद्ध गीत गाते—

सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल मे है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमा,
हम अभी से क्या बताए क्या हमारे दिल मे है।

सरकारी गवाहो से इस प्रकार जिरह करना कि क्रान्तिकारी दल के उद्देश्य तथा नीति स्पष्ट हो जाए भगतसिंह के दिमाग की योजना थी। फणीन्द्रनाथ घोष से शिव वर्मा ने इस प्रकार बहस की कि वह बम्ब बनाने की सारी तरकीब ही बता गया और इस बयान से बहुत से लोगो को बम्ब बनाना आ गया। यही नही, अपने क्रान्तिकारी आन्दोलन को विश्व के क्रान्तिकारियो के साथ जोडने के लिए अदालत मे लेनिन दिवस मनाया गया। जर्मनी मे श्याम जी कृष्ण वर्मा की मृत्यु होने पर शोक सदेश भेजा गया, हगरी मे राजनीतिक कैदी द्वारा भूख हडताल मे मरने पर शोक दिवस मनाया गया। भगतसिंह इस तरकीब से यह सब कुछ करते कि सरकारी कार्यवाही मे यह शामिल हो जाए और उनकी पार्टी की असली नीति जनता को मालूम हो जाए।

भगतसिंह जानते थे कि मौत की सजा या आजन्म कारावास की तलवार उनके सिर पर लटकी है फिर भी वह अदालत के बीच मे लच टाइम पर हस हसकर खाते सबको खिलाते और पिकनिक का सा माहौल पैदा कर देते। ऐसी हिम्मत या जिदादिली वही आदमी दिखा सकता है जिसको यह विश्वास हो जाता है कि उनकी मृत्यु ही उनके आदर्शो की गवाह बनेगी विदेशी शासन का अत करने के लिए देशवासियो मे जोश भर देगी। अदालत मे, भगतसिंह खूब जोर से बोलते ताकि बाहर खडे लोग उनकी बातें सुनें उनकी पार्टी के दर्शन को जान ले और भली प्रकार समझ ले कि वह यमो नही, देश की आजादी तथा तरक्की के दीवाने है। वह अदालत मे ही गाते—

कभी वो दिन भी आएगा कि जब आजाद हम होंगे
ये अपनी ही जमीं होगी यह अपना ही वतन होगा।
शहीदो की चिताओ पर जुडेंगे हर बरस मेले
वतन पर मरने वालो का यही बाकी निशा होगा।

बाहर खडी भीड इन लाइनो को दुहराती। भगतसिंह बडी चतुराई से अपने उद्देश्य की ओर बढ रहे थे।

अदालत मे हथकडिया लगे रहने के विरोध मे, भगतसिंह और उनके

साथियों ने अदालत में आना नामंजूर कर दिया। पुलिस ने सब लोगों को जम
मारा, पर कोई अदालत में न लाया जा सका। एक दिन अदालत के ह
कमरे में खाना खाते समय भगतसिंह ने हथकड़ियां खोलने के लिए कहा, व ख
दी गई, पर बाद में उन लोगों ने हथकड़ियां नहीं लगवाई। इस पर मजिस्ट्रेट
संकेत पर उनको मारने पीटने के लिए पहले से तैनात पठान छोड़ दिए गं
भगतसिंह इसके मुख्य निशाने थे। इस दृश्य को अनेक लोगों ने देखा। शाम
शहर में जलसा हुआ, इसमें इस कार्यवाही की निन्दा की गई। देश विदेश
अखबारों में खबरें छपी, अंग्रेजी शासन का काला चेहरा लोगों के सामने अ
और भगतसिंह के सिद्धान्तों की धूम मच गई। लेकिन गांधीजी उनके मा
अहिंसा का सवाल था। हिंसा को हिंसा से दबाया जा रहा था। उनके लिए य
का यही कारण था।

जेल-सुधार समिति की सिफारिशों को लागू करने का समय नवम्बर 19
रखा गया था, फिर इसको दिसम्बर तक बढ़ा दिया, जनवरी भी बीत गया
सरकार ने कोई कदम इस दिशा में नहीं उठाया। इस पर भगतसिंह ने 4 फरव
सन 1930 में फिर भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी और स्पेशल मजिस्ट्रेट को
लिखकर अपनी शिकायतों का ब्योरा दिया। वह हमेशा अपने अधिकारों के लि
लड़ते रहे और अपनी हर लड़ाई को इस प्रकार लड़ते थे कि देशवासियों के लि
एक खबर बन जाए और आजादी की लड़ाई में उबाल आ जाए।

## एक नयी ट्रिब्यूनल अदालत का गठन और उसके सामने भगतसिंह

भगतसिंह तथा अन्य क्रांतिकारियों की यह नीति थी कि उनके साथ जब
कोई ज्यादती होगी, वे अदालत नहीं जाते थे। यह मुकदमा लम्बा खिंचता
रहा था। सरकार इसका जल्दी निपटारा के पक्ष में थी, वह नहीं चाहती थी
इस मुकदमे की अखबारों में छपने वाली कार्यवाही से जनता की राष्ट्रीय भावन
में उबाल आये। इसलिए सरकार ने असेम्बली में एक बिल पेश किया कि य
कोई अभियुक्त अदालत में पेश नहीं होता तो न्यायाधीश को अधिकार होगा
उसकी अनुपस्थिति में भी कार्यवाही जारी रखे। इस बिल का विरोध हुअ
सरकार ने बिल जाम राय के लिए पेश करने की बात मान ली। लेकिन 1 म
1930 को वायसराय लार्ड इरविन ने एक आर्डीनेंस जारी किया। इसके अनुस
तीन जजों का एक ट्रिब्यूनल नियुक्त किया गया जो अभियुक्तों सरकारी ग
की जिरह बचाव पक्ष के वकीलों की बहस और सरकारी गवाहों पर जिरह
अभाव में भी मुकदमे को एक तरफा सुन सकते है। पंजाब हाई कोर्ट ने ता

एक मुसलमान जज था। ट्रिब्यूनल की नियुक्ति को भगतसिंह अपनी नैतिक जीत मानते थे। उनका मत था कि इससे अंग्रेजों की न्यायप्रियता का जनाजा निकल गया है। अतः उनका विचार था कि साथियों को अदालत की कार्यवाही से अलग होना चाहिए, लेकिन दूसरे साथी चाहते थे कि भगतसिंह इस अदालत में भी पहले जैसा सैद्धांतिक बयान दें। भगतसिंह ने साथियों की बात मान ली।

अभियुक्त अदालत में आते। इन्क्लाब जिन्दाबाद का नारा लगाते, वन्दे मातरम् गीत गाते, मस्ती में झूमते शेरों की तरह अदालत में आते और 'सरफरोशी की तमन्ना' वाला गीत गाते। अंग्रेज जजों को इससे परेशानी होती। एक दिन अदालत में बड़े मीठे स्वर में भगतसिंह ने गाया—

वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है
सुना है आज मक्तल में हमारा इम्तहा होगा?
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी जमीं होगी और अपना आसमां होगा?

मुख्य जज ने इन पंक्तियों का अर्थ पूछा तो आग बबूला हो गए। दूसरे दिन वह कुर्सी पर आकर पहले ही बैठ गए, ज्यों ही अभियुक्तों ने नारे लगाते हुए प्रवेश किया तो उन्होंने उनको बन्द करने का आदेश दिया। मौत से खेलने वाला क्रान्तिकारी ऐसे आदेशों को कब मानता है। भगतसिंह ने फिर गाना शुरू किया—

अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रखा था,
रंज रखा था, मुहिम रखी थी, गम रखा था,
किसको परवा थी और किसमें ये दम रखा था
हमने जब वादिए गुरबत में कदम रखा था,
दूर तक यादे वतन आयी थी समझाने को!

इस पर पुलिस को हुक्म दिया गया कि गाने को बंद कराया जाए, पुलिस बीच में आ गई। उसने अभियुक्तों को बुरी तरह मारना शुरू कर दिया। प्रधान न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम इस दृश्य को देखता रहा। ट्रिब्यूनल के तीसरे जज जस्टिस आगा हैदर इस अन्याय के विरोध में उठने को हुए, पर कोल्डस्ट्रीम की व्यक्तिगत प्रार्थना पर बैठे तो रहे, पर अखबार से मुंह ढक लिया। अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था का यह राक्षसी रूप था, जिसको गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं ने तो सह लिया था, पर जनता ने नहीं सहा। इतनी बर्बरता के साथ, अदालत में चोरों, डाकुओं तथा कातिलों को भी नहीं पीटा जाता, जितनी बर्बरता के साथ अंग्रेजी-पुलिस देश के इन दीवानों को पीट रही थी। चौरी चौरा के काण्ड पर आंदोलन वापस लिया जा सकता था, पर देशभक्तों के साथ हुई बर्बरता पर

आंदोलन नही छेडा गया, इसलिए कि भगतसिंह गांधी जी तथा कांग्रेस के नीतिक प्रतिद्वंदी थे। वह अंग्रेजो के खिलाफ उमड उठा। कांग्रेसी आंदोलन वल पर ही कामयाब हुआ। इस घटना के बाद अदालत उठ गई। स्थगन अ पर केवल अंग्रेज जजो ने ही हस्ताक्षर किए, जस्टिस आगा हैदर ने नहीं। उ समस्त कार्यवाही से स्वयं को अलग रखते हुए अलग से निर्णय दिया। याद सभी साथी भगतसिंह की बात पर सहमत हो गए और न्याय का बहिष किया जाने लगा।

वायसराय ने पहला ट्रिब्यूनल समाप्त करके दूसरा बनाया, जस्टिस जी० हिल्टन अध्यक्ष बने और जस्टिस अब्दुल कादिर तथा जे० के० टैप सद ट्रिब्यूनल ने अभियुक्तों से अपना पक्ष पेश करने को कहा पर वे तैयार हुए। वे समझ गए कि अब फैसला होने वाला है। 5 अक्टूबर 1930 को जे पार्टी हुई। क्रान्तिकारियो तथा जेल अधिकारियो ने बडी सदभावना के साथ लिया। क्रान्तिकारी मिल रहे थे, विदा ले रहे थे, हस रहे थे, खुश हो र मजाक कर रहे थे। अधिकारी इस जश्न पर चकित थे। दूसरे दिन, जेल के और पुलिस का सख्त पहरा लगा दिया गया। अंग्रेजो को डर था कि जनता तोडकर भगतसिंह तथा उसके साथियो को न छुडा ले।

7 अक्टूबर 1930 को सुबह जेल मे जाकर ट्रिब्यूनल का फैसला सु गया—भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फासी, कमलनाथ तिवारी, वि कुमार सिन्हा जयदेव कपूर, शिववर्मा, गयाप्रसाद, किशोरीलाल और महा सिंह को आजन्म कालापानी, कुन्दलाल को सात वर्ष की सजा, प्रेमदत्त को साल की कैद और मास्टर आशाराम अजयघोष, सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय, देशराज जितेन्द्रनाथ सा याल को बरी कर दिया गया।

## सरदार किशनसिंह का कानूनी दाव पेंच और भगतसिंह की प्रतिक्रिया

*इस फसले को सुनकर सरदार किशनसिंह व्यथित हो उठे। क्रान्तिकारी वह* थे लेकिन उनकी नीति खुद सुरक्षित रहकर वार करने वाली थी। इसलिए भगतसिंह को बचाना चाहते थे, अपने लिए नही, देश के लिए, क्रान्तिक आन्दोलन को जिन्दा रखने के लिए। इसलिए उन्होने स्पेशल ट्रिब्यूनल को ज्ञापन दिया कि सॉण्डर्स वध के दिन भगतसिंह लाहौर मे थे ही नही। वह उन्होने खद्दर भण्डार परी महल लाहौर के मैनेजर रामलाल को एक पत्र लि था जो डाक द्वारा उनको मिला था। वह गवाह के रूप मे पेश हो सकत दाव अचूक था। किन्तु भगतसिंह को मंजूर नही था। अपने पिताजी को

लिखकर अपना विरोध प्रकट किया। पिताजी को लिखा, भगतसिंह का यह पत्र देशभक्ति और इंसानियत की मील है। भगतसिंह अपने जीवन के साथ नहीं, अपने सिद्धांतों के साथ प्रतिबद्ध हो गए थे, देशभक्ति में मौत को इतना प्रिय बना लेना उनके वश की ही बात थी। स्वाधीनता आंदोलन के अनेक नेता सिद्धांतों को ताक पर रखकर स्वाधीनता का वैभव भोगने के लिए जिंदा रहे, अपनी कुर्सी के लिए देश को बांट भी लिया लाखों लोगों को पुश्तैनी घर तथा जमीन से भागने के लिए मजबूर भी करा दिया हजारों बालिकाओं का शील भंग हुआ, बलात्कार तथा मारकाट के दृश्य में मानवता कराह उठी और नैतिक तथा सामाजिक मूल्य विहीन पीढ़ी को जन्म देकर वे नेता गद्दियों पर बैठे रहे लेकिन भगतसिंह ऐसे व्यक्ति नहीं थे। उनको आदर्श प्यारे थे, सिद्धांतों के लिए मरना अच्छा लगता था। इसलिए घर से विमुख हुए, पिता से विरोध प्रकट किया और अंग्रेज सरकार के सामने अड़ गए। जानते थे कि इसका परिणाम मौत होगा, लेकिन देश और समाज की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्ति का डर किसी से नहीं लगता। जेल उनके लिए तीर्थ स्थल बन जाती है उसकी तकलीफें अमृत बन जाती है और मौत मोक्ष का पैगाम लेकर आती है। भगतसिंह के सामने गांधीजी आदर्श नहीं थे आदर्श थे महान् क्रांतिकारी रूसी अक्टूबर क्रांति के नायक लेनिन महान क्रांति।

## भगतसिंह को जेल से छुड़ाने का असफल प्रयत्न

आजाद भगवतीचरण सुखदेव राज और यशपाल की योजना थी कि भगतसिंह तथा उनके दोनों साथियों को जेल से छुड़ा लिया जाए। इसके लिए उन्होंने योजना बनाई। एक योजना यशपाल की थी और दूसरी स्वयं भगतसिंह की। यशपाल की योजनानुसार सेन्ट्रल जेल के फाटक पर उस समय आक्रमण करना था, जब भगतसिंह तथा उनके साथियों को अदालत में अथवा बोस्टल जेल ले जाने के लिए निकाला जा रहा हो। इसका कारण यह बताया गया था कि सेन्ट्रल जेल का फाटक सड़क के बहुत पास है, अतः वहां तक पहुंचने में किसी को संदेह न होगा। दूसरे वहां पुलिस का प्रबंध भी ज्यादा नहीं रहता था। भगतसिंह की योजना थी कि जेल पर हमला उस समय किया जाए जब हम लोगों को कचहरी से वापस जेल लाया जा रहा हो। बोर्स्टल जेल का फाटक सड़क से लगभग सौ गज दूर था, दूसरे उसके सामने शेर दिल पुलिस की एक टुकड़ी हर समय रहती थी। यशपाल इस योजना के विरोध में थे।

पहली योजना यह भी कि मूर्च्छा गैस कचहरी के कमरे में छोड़कर उनको छुड़ा लिया जाय। लेकिन हंसराज ने उनको गैस बनाकर नहीं दी। यह बार

बार धोखा देता रहा। इसलिए अदालत के कमरे से उनको छुड़ाने की योजना त्यागकर जेल के फाटक से ही छुड़ाने की योजना बेकार ज्ञान लगा थी। भगवतीचरण तथा आजाद चाहते थे कि यशपाल व ट्रक चलाने की ट्रेनिंग लें। इसके लिए वह जिला मेरठ के एक गांव में गए भी। योजना को कहां और किस प्रकार क्रियान्वित किया जाय, इस विषय में यशपाल की आपत्तियों पर जेल से भगतसिंह ने संदेश भेजा था—"उस कलाकार से कहो नित्य नई कल्पना (अर्थात शेर दिल काण्ड) न गढ़ा करे। जो पहले सोचा है, वह पहले होना चाहिए। उसे समझाओ कि परिस्थिति और नीति निश्चित करने में मोटा (भगवतीचरण) ज्यादा योग्य है। एक्शन (सशस्त्र संघर्ष) में मोटे को बचाकर पंडित (आजाद) को आगे रखो। कलाकार (यशपाल) से कहो मैनीफेस्टो लिखे। इस संदेश से मालूम पड़ता है कि भगतसिंह मुक्त होना चाहते थे और उनको अपने दल के सदस्यों की योग्यता तथा काम करने की ताकत का अच्छा तरह ज्ञान था। पार्टी के कामों पर उनकी जबरदस्त पकड़ थी। साथ ही उनको यशपाल की योजना स्वीकार नहीं थी। यशपाल द्वारा लिखित पुस्तक 'सिंहावलोकन' पढ़ने से ज्ञात होता है कि यशपाल को, भगतसिंह द्वारा कलाकार कहा जाना अच्छा लगा था, योजना बनाने में अकुशल कहना अच्छा नहीं लगा। इसका यह अर्थ न निकाला जाय कि उन्होंने भगतसिंह की मुक्ति के लिए गम्भीरता के साथ प्रयास नहीं किए।

जेल पर हमला करके भगतसिंह और साथियों को छुड़ाने के लिए 1 जून का दिन निश्चित किया गया था। 28 मई को भगवती भाई ने यशपाल से कहा कि बमों को भरकर तैयार कर दो ताकि उनमें से एक को आजमा कर देख लिया जाए। बमों के खोल कानपुर में तैयार हुए थे और मसाला रोहतक में। यशपाल के अनुसार बमों को भगवती और सुखदेव राज ने भरा था। उसको आजमाने के लिए सुखदेव राज, भगवती भाई आदि रावी के किनारे जंगल में ले गए और फेंकने से पहले ही वह बम्ब भगवती भाई के हाथों में ही फट गया था, जिससे वे दोनों तथा बच्चन बुरी तरह घायल हो गए थे। इसी दुर्घटना में, भगवती भाई की मृत्यु हो गई थी। यशपाल 'सिंहावलोकन'-2 में, स्वीकार करते हैं कि इस घटना के लिए दोषी वह हैं कि जब बम्ब का ट्रिगर ढीला था तो उसको ठीक पहले ही मैंने क्यों नहीं किया? क्रांतिकारियों को जेल से छुड़ाने की अकुशल योजना बनाने के लिए यशपाल को क्षमा किया जा सकता है, किन्तु बम के ट्राइगर न कसने के लिए माफ नहीं किया जा सकता अगर ऐसा कर दिया गया होता तो भगवतीचरण भी बच जाते और भगतसिंह भी छूट गए होते। भगतसिंह को छुड़ाने की योजना के संदर्भ में बहावलपुर रोड पर एक बंगला किराए पर लिया गया था। उसको खाली करते समय, एक पत्र को

फाडकर फेंक दिया गया था। पुलिस को, उनके टुकड़ों में कुछ सूत्र मिले, जिनके आधार पर गिरफ्तारियां हुई थी।

एक्शन में शामिल होने के लिए, छैलबिहारी तथा मदनगोपाल दोनों को, एक्शन की भयंकरता और मौत का खतरा बताकर पूछा गया था, छैलबिहारी उस स्थिति के लिए तैयार नहीं था। मदनगोपाल ने साहस अवश्य किया था। आजाद द्वारा सब लोगों की ड्यूटिया बांट दी गई थी। जगदीश और बच्चन को दायित्व सौंपा गया था कि वे भगतसिंह का बोस्टल जेल पहुंचने की सूचना देंगे। उन्होंने सूचना दी थी कि सवा-दो बजे पुलिस की गाड़ी उनको बोस्टल जेल पहुंचाकर लौट गई है। अतः अनुमान किया गया था कि वह पांच बजे के लगभग लौटकर आयेंगे। इसलिए चार बजे सब लोग कार में बैठकर जेल की ओर जाने को तैयार हुए, तभी सुशीला भाभी ने, अपनी उंगली के खून से, सबके माथे पर तिलक लगाया। सब लोग जेल के सामने से गुजरकर नहर की ओर चले गए। बच्चन को यह बताना था कि कब भगतसिंह जेल से बाहर आते हैं। ज्यों ही पुलिस की गाड़ी उनको लेने के लिए आई और वह जेल के फाटक से पीछे की खिड़की को सटाकर खड़ी हो गई। तब आजाद ने यशपाल से पूछा, अब? जवाब मिला, आगे बढ़ना है। इन लोगों ने बांसुरी बजाकर भगतसिंह को अपनी उपस्थिति का सिगनल दिया। यशपाल का काम था, फाटक के सामने बेंच पर बैठे छह सिपाहियों पर बम्ब फेंकना, बच्चन का काम था, लारी में बैठे सिपाहियों को बम्ब फेंककर रोके रखना। मदन गोपाल का काम था अपनी ओर दौड़कर आते भगतसिंह तथा दत्त को एक-एक रिवाल्वर देना। भगतसिंह फाटक से बाहर निकले, लेकिन उन्होंने माथा खुजलाकर इशारा नहीं दिया, जिसकी प्रतीक्षा वे कर रहे थे। इसलिए योजना शुरू नहीं की जा सकी। बस उनको लेकर चली गई। कुछ हंसराज की वायदा खिलाफी के कारण और कुछ यशपाल की आपत्तियों तथा असहमतियों के कारण भगत सिंह तथा उनके साथियों को जेल से मुक्त कराने की योजना अधूरी रह गयी और महान देशभक्तों के लिए फांसी का फन्दा सुनिश्चित हो गया। क्रान्तिकारी आन्दोलन की यह सबसे बड़ी असफलता थी। भगवती बाबू तो इस योजना के शुरू होते ही बम्ब फटने के कारण स्वर्ग सिधार गए थे और आजाद बाद में अलफ्रेड पार्क इलाहाबाद में, पुलिस की गोलियों के शिकार हो गए थे। हां, यशपाल अवश्य बच रहे थे। कुछ उपन्यास तथा 'सिंहावलोकन' नाम से, क्रान्तिकारियों के कम, अपने संस्मरण अधिक लिखने के लिए। अगर सारी घटना पर नजर डाली जाय तो यशपाल जी दूध के धुले प्रतीत नहीं होते। वह सावधानी के साथ चल रहे थे।

# काल कोठरी में साधना रत एक महामानव

ट्रिब्यूनल के फसल के खिलाफ, लाहौर कस की बचाव समिति ने प्रिवी कौंसिल म अपील करन की जोरदार तयारी की। फैसला इकतरफा था—अदालत म न अभियुक्त पश हुए थ, न बचाव पक्ष की आर स वकील तथा साक्षिया पश की गई थी और न ही सरकारी पक्ष के गवाह तथा उनस बहस हो पाई थी। इसलिए केस कानून की नजर म बहुत कमजोर था और दुनिया की नजरा म ब्रिटिश न्याय की कलई खाल रहा था। अत अपील मजूर होन की उम्मीद थी, भगतसिंह को अपील स्वीकार कराना मजूर नही था। उनको, अपनी फासी स जिस सफलता की आशा थी, वह अपील की मजूरी से नही थी। अस्तु, सलाह क लिए आए विजय कुमार सिनहा स आपन कहा था—'एसा न हो कि फासी रुक जाय। हम मरकर ही क्रांति की सवा कर सकते हैं।' पडित मोतीलाल नहरू की इच्छा थी कि फासी को थाडे दिन रोके रखन के लिए अपील कर दी जाय, इस बीच म दूसर कदियो को छुडान का मौका भी मिल जायगा। वकील प्राणनाथ मेहता भी अपील के पक्ष मे थे। भगतसिंह न इस स्थिति स निपटने के लिए दो शर्तें पेश की—'पहली कही यह न कहा जाय कि हम लाग क्रान्तिकारी नही है और दूसरी अपील का आधार वायसराय के आर्डीनन्स को चुनाती दी जाय।' य दोना शर्तें भगतसिंह को भावी-युग का सजक बना रही थी। वह जानत थे कि इन दोना बातो स, फासी ता माफ होगी नही, सिफ फासी लगन का समय आग खिसक जायगा। वह चाहत थ—फासी तब हो, जब दश की जनता का जाश पूरे उफान पर हो और उसका ध्यान पूरी तरह उसकी फासी पर केंद्रित हो। इस इच्छा क पीछे कोई स्वाथ नही, वरन् अपनी फासी की घटना से, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को गति देना था और जिन आदर्शों के लिए फासी पर चढा जा रहा है, उनके प्रति जनता को भावुक तथा प्रतिबद्ध बनाना था। इसस बडा सबूत भगतसिंह की दश भक्ति का और क्या हो सकता था?

फासी की काल काठरी मे बैठे भगतसिंह, मौत की चिंता किए बिना, क्रांतिकारी साहित्य पढने म मग्न थ, 24 जुलाई सन 1930 को सन्ट्रल जेल लाहौर स जयदेव को पत्र लिखकर जो पुस्तकें आपने मगाई थी, उनकी सूचा, उनक दिमाग की दिशा का आभास दती है।

किताबो की सूची थी—

| | | |
|---|---|---|
| 1 | काल मावस | सिविल वार इन फ्रास, |
| 2 | ,, | लैण्ड रिवाल्यूशन इन रसा |
| 3 | प्रिस को आटकिन | म्युचुअल एड |

| | | |
|---|---|---|
| 4 | बी० रसल | बाई मैन फार्ट |
| 5 | ,, | सोवियत एट वा |
| 6 | , | कालेप्स आफ मैकेन्ड इंटरनेशनल |
| 7 | फोल्डरा | फैक्टरीज एण्ड वर्क शाप |
| 8 | अप्टा सिंक्लयर | स्पाई |
| 9 | बुखारिन | हिस्टारिकल मटिरियलिज्म |
| 10 | डार्लिंग | पीजेन्टस ऑन प्रापर्टीज एण्ड टेट |

इनके अलावा भी वह किताबें मागत तथा पढ़ते थ। भगतसिंह कुल एफ० ए० तक पढ़े थे लेकिन स्वाध्याय से उन्होंने पूरा ज्ञान कर लिया था। पढ़ने के साथ, फासी की काल कोठरी म ही आपने चार पुस्तकें लिखी—1 आत्म कथा, 2 दि डोर टू डेथ 3 आइडिअल आफ सोशलिज्म, 4 स्वाधीनता की लडाई म पजाब का पहला उभार। इन किताबों स भगतसिंह के चिंतन की उस दिशा का अनुमान लगता है जो वह भारत के भावी समाज के विषय मे सोच रहे थ।

इसी काल कोठरी मे भगतसिंह ने देश के नौजवान साथियों को सदेश भेजा, इसी स अपने भाई कुलतार का पत्र लिखा और इसी मे उन्होंने अपने वकील प्राणनाथ महता के मर्सीपिटीशन के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने से मना किया था। प्राणनाथ महता ने, अनेक तरह उनको समझाया, देश के लिए उनके जीवन की जरूरत का महत्त्व बताया, उनके जीवन को उनकी नही, समाज की सम्पत्ति भी कहा और यह भी जोड़ा कि भारत उनको जीवित रखना चाहता है, पर व इस स मस नही हुए। राजगुरु तथा सुखदेव को तो नाराजगी भी हुई, पर भगतसिंह ने उनको शात कर दिया। दूसरे दिन, एक कमेटी द्वारा तयार किया गया ड्राफ्ट लकर प्राणनाथ महता फिर जल म उनस मिले। भगतसिंह ने उस ड्राफ्ट पर हस दिया। वह बोले, 'हमने तो प्रार्थना भेज भी दी', और उन्होंने अपना ड्राफ्ट दिखाया, उसको देखकर प्राणनाथ भगतसिंह का इरादा समझ गए। उनकी मर्जी के सामने खडे रहने का साहस उनम न था। वह समझ गए थ, भगतसिंह बहुत दृढ है।

5 मार्च 1931 को गाधी इरविन समझौता हो गया। जेलो स सत्याग्रही छोड जाने लगे। उनके स्वागत हो रहे थे, गल म मालाए गिर रही थीं पर सच्चे देश भक्तो के गलो के समीप फासी का फन्दा बन रहा था। वायसराय इरविन से बातें करने के लिए जाने के समय, देश की जनता ने गाधी जी से भगतसिंह और उनके साथियो के प्राण बचाने के लिए प्रार्थना की थी। इस विषय का वायसराय के सामने उठाने का अनुरोध किया था पर गाधी जी मौन रहे। वायसराय गाधी जी की भावना को समझ गया था। उसने देख लिया था

कि गांधी जी सफल होते हैं, तो भारत में अंग्रेज कुछ दिन और ठहर सकते हैं, यदि भगतसिंह सफल होते हैं तो अंग्रेजों की विदाई तुरंत निश्चित है।

सरदार किशनसिंह की अपील खारिज हो गई थी। सरकारी वकील कार्डन नोड हाईकोर्ट से फांसी देने का आदेश हासिल कर चुका था। यह सब गुप्त रखा गया, पर लोग समझ गए थे कि भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी होने वाली है। इसलिए जनता जेल की ओर मुड़ रही थी। प्राणनाथ महता, क्रांतिकारी लेनिन की जीवनी लेकर भगतसिंह के पास पहुंचे थे। क्योंकि भगतसिंह ने उसको मंगाया था। मेहता ने, उनसे अंतिम संदेश मांगा, वह बिना सोचे बोले—'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, इन्कलाब जिंदाबाद'। प्राणनाथ ने उनसे उनकी अंतिम इच्छा पूछी। उसका उत्तर था—फिर जन्म लूं और मातृभूमि की अधिक सेवा कर सकूं।'

उसी दिन उनको एक पुर्जा मिला, उसमें लिखा था—सरदार, आप एक सच्चे इन्कलाबी की हैसियत से बताएं कि क्या आप चाहते हैं कि आपको बचा लिया जाये। इस आखिरी वक्त में भी शायद कुछ हो सकता है। अगर कोई दूसरा होता तो प्राणों की भीख मांगता। पर उनका उत्तर था—मैं कैद होकर या पाबंद होकर जिंदा रहना नहीं चाहता। मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब पार्टी का निशान बन चुका है और इन्कलाब पार्टी के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊंचा कर दिया है। इतना ऊंचा कि जिंदा रहने की सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इम्तहां का इंतजार है। आरजू है कि यह और करीब आ जाय।' वह कौन सा आखिरी इम्तहां था, जिसकी प्रतीक्षा भगतसिंह कर रहे थे? वह जल्दी से जल्दी देशवासियों को दिखाना चाहते थे कि क्रांतिकारी आदर्शों की रक्षा के लिए हंसते हंसते फांसी का फंदा गले में इस तरह लगाया जाता है।

## जीवन नाटक का अन्तिम दृश्य

सर फरोशी के लिए भगतसिंह पूरी तरह तैयार हो चुके और बाजुए-कातिल का जोर देखने के लिए लालायित थे—उनके रोम रोम से आवाज निकल रही थी—

सर फरोशी की तमन्ना आज हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए-कातिल में है।

दोपहर का समय था, भगतसिंह मस्ती के साथ, साथियों द्वारा भेजे गए रसगुल्ला खा रहे थे। यही उनके जीवन का आखिरी खाना था। सहसा बाहर घूमते कैदियों को हुक्म दिया गया कि अपनी अपनी बैरकों में चले जायें। यह

अजीब बात थी, संध्या के समय बैरकों में बन्द होने वाले कैदियों को दिन में बन्द किया जा रहा था। स्थिति गम्भीर थी, इसका अनुमान लग रहा था। उसी समय जेल के चीफ वार्डन सरदार चतरसिंह ने भगतसिंह से आकर कहा— 'बेटा, यह आखिरी समय है, मेरी एक बात मान लो।' भगतसिंह ने मुस्कराकर उनका स्वागत किया। वह बोले— आखिरी वक्त में तो वाहे गुरू का नाम ले लो और गुरवाणी का पाठ कर लो।' और उन्होंने गुटका उनकी ओर बढ़ा दिया। लेकिन भगतसिंह यह तो न मौत से घबड़ाते थे, न उनको धर्म का डर था और न परमात्मा को पाने की कामना। उनका उत्तर था, 'अब जब आखिरी वक्त आ गया है, तब मैं परमात्मा को याद करूं तो वह कहेंगे, यह बुजदिल है। तमाम उम्र तो इसने मुझे याद किया नहीं, अब जब मौत सामने नजर आयी है तो मुझे याद करने लगा है।' उनको इस बात की फिक्र नहीं थी कि लोग उनको नास्तिक कहेंगे, लेकिन लोगों से बुजदिल और बेईमान कहलाना नहीं चाहते थे। वह अडिग रहे, अंतिम क्षण तक, अपनी आन पर कायम रहे, अपने विश्वासों को बनाए रखा।

जिस समय, उनकी कोठरी का दरवाजा खुला और जेल अधिकारी ने भीतर कदम रखा था, उस समय वह वकील प्राणनाथ मेहता की लाई हुई लेनिन की जीवनी पढ़ रहे थे। उनकी आत्मा महान् क्रांतिकारी, दुनिया से शोषण और साम्राज्य का अंत कर देने वाले महान् व्यक्ति के साथ मिलकर एक हो गई थी। जेल अधिकारी ने आकर कहा था— सरदार जी, फांसी लगाने का हुक्म आ गया है, आप तैयार हो जायें।' भगतसिंह ने पुस्तक पर से नजर उठाये बिना, अपना बायां हाथ उठाकर कहा— ठहरो, एक क्रान्तिकारी, दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है।' स्वर में, कड़क थी। जेल अधिकारी सहम गया। भगतसिंह ने कुछ पराग्राफ पढ़े और उसके बाद पुस्तक छत की ओर उछाल दी। उछलकर खड़े हुए, बोले— चलो'।

## अन्तिम दृश्य

भगतसिंह काल-कोठरी से बाहर आ गए थे। राजगुरु तथा सुखदेव भी आ गए थे। तीनों ने एक-दूसरे को देखा, आंखों आंखों में बातें हुई, गले मिले। अब भगतसिंह बीच में थे और उनके बायें सुखदेव तथा दायें राजगुरु थे। उनकी दोनों भुजायें दोनों साथियों की भुजाओं पर रखी थी। तीनों एक क्षण रुके, फिर भगतसिंह ने गाना शुरू किया—

दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत।
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।

फिर तीनो ने मिलकर गाया, झूमकर गाया, मस्ती के साथ गाया और गाते गाते चल पडे, अंतिम बार की यात्रा, जहा भारत की स्वाधीनता दवी उनके अभिनन्दन के लिए खडी थी।

फासी घर पर लाहौर का डिप्टी कमिश्नर मौजूद था। उसे देखकर, भगतसिंह ने कहा— वैल मिस्टर मजिस्ट्रेट, यू आर फाचूनेट टु बि एबल टु सी हाऊ इंडियन रिवाल्यूशनरीज कन एम्ब्रेस डेथ विद प्लेजर फार दि सेक आव देयर सुप्रीम आइडियल।' यह कहकर तीनो फासी मच की सीढ़िया पर चढ़े। फासी के फदे लटके थे, उनके पीछे तीनो खडे हो गए। फिर तीनो ने नारा लगाया—'इन्कलाब जिदाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।' इसके बाद फदे को चूमा। अपने हाथो से गले मे डाला और पास खडे जल्लाद से नम्रतापूर्वक कहा, "इसको ठीक कर लो।' सध्या के 7 बजकर 33 मिनट पर तीनो अमर शहीद भारत माता की मिट्टी मे मिल गये—

जालिम फलकने लाख मिटाने की फिक्र की,
हर दिल मे अक्स रह गया, तस्वीर रह गई।

क्रूर ब्रिटिश सरकार ने इन क्रांतिकारियो के प्राण लेकर मिटाने की कोशिशें की, गाधीवादियो ने उनको भुलाने की साजिशें की, लेकिन क्या वह मिटे ?

## क्रान्ति के दार्शनिक भगतसिंह

क्रान्ति के दार्शनिक की न कोई जाति होती है न धर्म वह सकीर्ण सीमाओ से बहुत ऊचा उठ जाता है। उसके सामने, शोषित उपेक्षित, उत्पीडित और अभावो मे ग्रसित इसान का एक समाज होता है, जिसकी समृद्धि और तरक्की के लिए वह सोचता है और उन तमाम ताकतो पर हर तरीके से चोट करता है, जो इसान का खून पीती रहती है उसकी महनत का शोषण करती हैं, खुद ऐश और आराम की जिंदगी बसर करती हैं, लेकिन इसान की महनती जमात को भूखा तथा नगा रहने के लिए मजबूर कर देती है और जब कभी भूखे तथा नगो की यह जमात अपना हक मागती है, अपने इसानी अधिकारो की आवाज बुलद करती है, तथा अपने राजनीतिक अधिकारो की लडाईछेड देती है तो उसको गोलियो से भून दिया जाता है, जेलो मे सडा दिया जाता है और फासी के तख्ते पर चढा दिया जाता है।

विश्व-स्तर पर शोषक वर्ग के खिलाफ लडाई का दर्शन पेश किया था कार्ल मार्क्स ने। उसको व्यावहारिक स्तर पर उतारा था लेनिन ने। सरदार भगतसिंह बचपन से ही आचरण के स्तर पर उस दर्शन के अनुयायी बन गए थे। उनको इसान तथा इसान के बीच अन्तर करने वाला व्यक्ति तथा दर्शन पसंद

हम, जब यह कहते हैं कि भगतसिंह क्रांतिदर्शी थे, तो हमारा मतलब यह होता है कि स्वाधीनता के बाद इस देश के लिए वह एक नयी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की वकालत कर रहे थे। उस व्यवस्था का स्वरूप क्या था, इसके विषय में उन्होंने असेम्बली बम्ब काण्ड के मुकदमे के सिलसिले में, 6 सितम्बर 1929 को सेशन जज की अदालत में बयान देते हुए विचार व्यक्त किए थे। उन्होंने कहा था—"क्रान्ति में हिंसात्मक संघर्षों का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की गुंजाइश है। क्रांति बम्ब और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान समाज-व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज के आवश्यक तत्त्व हैं, तथापि शोषक लोग उन्हें उनके श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक सपरिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढापने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन निर्माण, लोहारी और बढ़ईगीरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके गंदी गलियों में रहते और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रहे हैं। ये भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम असमानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति हमेशा नहीं रह सकती यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया तो वह नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा। इसलिए क्रांति-कारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि वे समाज का समाजवादी आधारों पर पुनर्गठन करें।

जब तक यह नहीं होगा और एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता एवं युद्ध को मिटाने तथा शांति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएं कोरा पाखण्ड है।

क्रांति से हमारा प्रयोजन अंततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है, जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए।" यह था भगतसिंह का क्रान्ति दर्शन जो हर मानव की आर्थिक तथा सामाजिक समता का पक्षपाती है।

सरदार भगतसिंह के दिमाग में भारत के ऐसे निजाम की तसवीर थी, जिसमें कोई भूखा तथा नंगा न रहे, मेहनत करने वाले को अपनी मेहनत का फल

मिल और इसान को धम, जाति तथा अथ के बल पर छोटे तथा बडे, ऊचे तथा गरीब क रूप मे न बाटा जाय । यदि गहराई के साथ, बिना किसी भेद भाव तथा पूर्वाग्रह के कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि वह इस देश के अनेक शुभ चिंतकों से अधिक शुभचितक थे और अनेक विचारकों से अधिक लोकतांत्रिक एव जनवादी विचारक थे, किन्तु काग्रेस के नेताओ के समान, अपने सिद्धान्तों के साथ सौदा करना नहीं जानते थे । अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए मिट सकते थे, पर डिग नहीं सकते थे । इसलिए मिट गए, पर हिले नहीं ।

# हे त्याग-मूर्ति, केशवानन्द

हँस हँस सदैव तप-त्याग किया,
सत सेवा का संभाग लिया,
दीनों दुखियों के कष्ट हरे
जन जीवन में सद्भाव भरे,
तुम साधु सुधी आनन्द कन्द
हे त्यागमूर्ति केशवानन्द।

तुमको न गृहस्थ भाव भाया
जन जन कुटुम्बवत अपनाया
तुम राष्ट्रधर्म उन्नायक हो,
सबके सन्मित्र-सहायक हो
काटे कटुता के छन्द फन्द
हे त्यागमूर्ति केशवानन्द।

अज्ञान अविद्या-नाशक हो
शुचि ज्ञान प्रभाव प्रकाशक हो,
मानवता समता के सुभवन
शुभ स्वावलम्ब-दृढतानुरक्त,
हे कर्मवीरता-व्योमचन्द
हे त्याग मूर्ति केशवानन्द।

नतिकता का निर्माण लिय,
जग जीवन रा कल्याण लिय
शुभ सत्य स्नेह की ज्योति जगे,
आपाधापी मे आग लगे,
तुम धमवीर विचरो अमन्द,
हे त्यागमूर्ति केशवानन्द !

(स्वामी केशवानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार)

# स्वामी केशवानन्द

## (संवत 1940-सन् 1972)

हिन्दुस्तान में रहने वाली जाट जाति सच्चाई, ईमानदारी, देश भक्ति और तलवार की तो हमेशा धनी रही है, पर रुपये पैसे का हमेशा उसके पास अभाव रहा है। इसका असली कारण यह है कि वह आमतौर पर खेती करती है और इस देश में खेती कभी मुनाफे का धन्धा नहीं रहा। कभी-तो विपरीत मौसम उसको चौपट कर जाता है और कभी सरकार तथा व्यापारी उसकी कमर तोड़ डालते हैं। इन पर से जो थोड़ा-बहुत बचता है उसको पंडा तथा पुरोहित, धर्म, ईश्वर तथा स्वर्ग के नाम पर छीनता रहा है। मेहनत वह करती है, अन्न वह पैदा करती है, लेकिन गोदाम भरे जाते रहे हैं व्यापारी तथा सामंतों के।

दुर्भाग्य यह है कि यह किसान कौम, अशिक्षा के कारण, इस आर्थिक शोषण के तरीके या चालाकी को समझती नहीं थी, इसलिए अनेक वर्षों तक गरीबी तथा शोषण की शिकार होती रही थी। लेकिन उन्नीसवीं सदी के आखिरी चरण में इस कौम में, कुछ ऐसे महानुभाव पैदा हो गए, जिन्होंने कौम की गरीबी को, पहले जन्म के पाप का फल न मानकर अथवा भाग्य की देन स्वीकार न करके, सामाजिक तथा आर्थिक शोषण का फल बताया और उसको दूर करने के तरीकों को बताया। पंजाब में चौधरी सर छोटूराम, उत्तर प्रदेश में चौधरी चरणसिंह और राजस्थान में स्वामी केशवानन्द ऐसी ही विभूतियां पैदा हुईं, जिन्होंने हमेशा किसानों तथा गरीबों की बहबूदी के लिए सोचा और काम किया।

### जन्म, परिवार और बचपन

स्वामी केशवानन्द जी का जन्म राजस्थान के मशहूर क्षेत्र शेखावाटी के ग्राम मगलूणा में हुआ था। सौभाग्य से, मगलूणा का पानी न तो बहुत नीचा था और न खारा। इसलिए वहां कुओं के आस पास गाजर मूली, तम्बाकू तथा अन्य चीजों की पैदावार किसान कर लिया करते थे। शायद इसी वजह से वहां की आबादी घनी थी, खेती करने वालों की तादाद अधिक थी और जमीन की कमी

थी। इसलिए इनके पिता ने मगलूणा छोड़ने और खेती का बनज त्यागने का फैसला किया था। एक दिन, उन्होंने आषाढ़ी की फसल काटकर खटटी की और उस पर गाव की सभी गायों को चरने के लिए छोड़ने का पुण्य कमाया था।

खुद न खाकर गायों को खिला देने की बहादुरी, दिलेरी तथा उदारता किसान मे ही होती है। वह इनके पिता जी ने दिखाई और सब कुछ छोड़कर रतनगढ़ मे आ गये। यहा उन्होंने एक माली को पगड़ी-बदल दोस्त बना लिया था। उसके पास ही, झोपड़ी डालकर खुद रहने लगे थे और बीबी बच्चों को भी ले आये थे। गुजारे के लिए, वह ऊट गाड़ी चलाने लगे थे। ऊट-गाड़ी से सवारी तथा माल लाना ले-जाना उनका काम था। इस तरह, वह किसान से मजदूर बन गए थे। अपनी बहन तथा बहनोई की मृत्यु के कारण असहाय भानजे को भी वह अपने पास रखते थे। एक दिन, वह अपने ऊट को चरने के लिए पगिहा देते समय, बैठे के बैठे ही रह गए। शायद उनके दिल की धड़कन रुक ही गई थी और इसके साथ ही बालक बीरमा तथा उसकी विधवा मा की दुनिया सूनी हो गई थी।

पिता की मृत्यु के समय स्वामी केशवानन्द की आयु ढाई वर्ष की थी और उनके फुफेरे भाई की 14 या 15 वर्ष की। रतनगढ़ में जीविका का कोई ठिकाना न देखकर, इनकी माता इनको तथा फुफेरे भाई को लेकर फिर मगलूणा आ गई लेकिन कुटुम्बियों ने वहा उनको जमने नहा दिया। अत वह अपनी मालदार मौसी के गाव मे आ गई और एक गाय तथा झोपड़ी लेकर वहा रहने लगी। बालक स्वामी केशवानन्द ने, गायें चराने का धधा करना शुरू कर दिया। गाय चराते समय उनको भेड़ियों का सामना करना पड़ता था। शिकारी भेड़ियों से, गायों तथा बछड़ों को बचाने की जो कला आपने बचपन मे सीखी थी, वही बड़ा होने पर अशिक्षा गरीबी तथा शोषण के भेड़ियों से इसान को बचाने के लिए, काम में आई। इसान को बचाने यानी उसको गरीबी बेकारी, अशिक्षा और शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए आपने पुस्तकालय, साहित्य सदन, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, युवक समिति, शिक्षा सदन छात्रावास, महिला विद्यापीठ आदि की स्थापनाएं करायी।

कहा जाता है कि—जाके नहीं फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई, लेकिन स्वामी केशवानन्द के पैरों म तो बचपन म ही एक नहीं अनेक बिवाइया फट चुकी थीं। छ-सात साल की उम्र से ही वह गर्मी सर्दी तथा बरसात म नगे पाव तथा नगे शरीर पशु चराने जाते थे। उन दिनों शादी होने पर ही, लड़के को पहनने के लिए धोती मिला करती थी।

स्वामी जी का बचपन का नाम बीरमा था और उनका जन्म संवत् 1940 वि० के पौष माह म हुआ था। पन्द्रह वर्ष की उम्र तक, बीरमा ने अनेक

कठिनाइयों का सामना किया था। उस समय के किसानों की गरीबी, हालत का वर्णन स्वामी जी ने इस प्रकार किया है— किसी बड़े या बूढ़े आदमी के कोट की एक अगरखी तिबार में बाहर खूंटी पर सदैव लटकी रहती। यदि किसी को विवाह मुकलावा जैसे ग्राम काम पर जाना होता तो उसे पहनकर चला जाता और आते ही उसी खूंटी पर उसे सजा दिया जाता।" गरीबी और तंगदस्ती के कारण किसानों की जब यह हालत थी, तो बच्चों की हालत की कल्पना, वे लोग हरगिज नहीं कर सकते जो शहरों में धनवान घरों में पैदा हुए हैं। बीरमा स्वामी केशवानन्द ने गरीबी देखी थी इसलिए वह धीरे धीरे एक इरादे की ओर बढ़ रहे थे, वह इरादा था—इंसान को गरीबी और अशिक्षा से छुटकारा दिलाना तथा गरीब किसानों को खुशहाली के रास्ते पर लगाना।

अपने बचपन की जिंदगी का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा है—'सिरहाना, गदेला, रजाई आदि रुई का कोई सामान उस जमाने में गांव में नहीं होता था, ऊनका कम्बल तिहरी और एकहरे कमलिये जरूर होते थे जो बैठने पर साथ प्रात ओढ़ लिये जाते थे और काम करने पर एक धोती ही होती थी तब फिर जंगल में फिरने वाले इन बाल गोपालों को कौन कपड़े, धोती और अगरखी पहनाता।" इस कथन से साफ जाहिर होता है कि बीरमा के रूप में बचपन में स्वामी जी ने नंगे बदन सर्दी, गर्मी काटी थी व गर्मी के दिनों में, पानी के सूख जाने पर रेतीली जमीन में घास जल जाती थी, इसलिए बीरमा को पांच पांच, छ छ मील तक गायें चराने के लिए ले जाना पड़ता था। वह दिन भर ग्वाले बनकर गायों की रखवाली करते, शाम को घर लौटने पर रात के समय बड़े-बूढ़ों से कहानियां सुनते और रात भर सोते। यही उनका क्रम था। बचपन के पंद्रह वर्ष उन्होंने इसी प्रकार गुजार दिए थे। उन दिनों कौन सा अभाव तथा दर्द ऐसा था जो उन्होंने न झेला हो।

## सन्यासी बनने की दिशा में कदम

पिता स्वर्ग सिधार गए थे। एक दिन माता भी चली गई और बीरमा रह गया अकेला। चारों तरफ नजरें दौड़ाई कहीं कोई सहारा नजर नहीं आया। गांव की सम्पत्ति पिताजी रतनगढ़ जाने से पहले ही छोड़ गए थे, परिवार के लोगों ने, बच्चे के साथ बेसहारा रतनगढ़ से लौटी विधवा को गांव में ठहरने ही नहीं दिया था। मां की मौसी के गांव में झोपड़ी के अलावा कुछ था ही नहीं। पंद्रह वर्ष का बीरमा बेसहारा अवश्य था, पर गाय चराते चराते तथा भेड़ियों से संघर्ष करते करते वह साहसी और दृढ़ निश्चय वाला बन गया था। इसलिए उसके मन में पढ़ने और तकदीर को आजमाने की इच्छा पैदा हुई और संवत् 1961 में

वह संस्कृत पढ़ने की इच्छा लेकर घर से निकल पड़े। भटिंडा आए, वहां से पैदल चलकर अबोहर होते हुए फाजिल्का पहुंचे। इस यात्रा में, रात को पुईखेड़ा में चौधरी राधाकृष्ण के परदादा के यहां ठहरे थे। चौधरी साहब राधास्वामी मत के अनुयायी थे। जाति के सुधार में रुचि रखते थे। उनके यहां रात बिताकर दूसरे दिन दस बजे फाजिल्का पहुंचे। वहां न कोई परिचित था और न कोई रिश्तेदार घूमते घूमते शहर पार किया और उस जगह पहुंचे जहां आजकल रेलवे स्टेशन है। एक पीपल के पेड़ के नीचे खड़े होकर, वह अपना रास्ता खोजने की तलाश में थे कि गुरुग्रंथ साहब का प्रकाशन करने वाले एक सिख ने उनसे पूछ लिया किधर जाना है। आपने जवाब दिया कि मैं यहां की संस्कृत पाठशाला में जाना चाहता हूं।

यह सुनकर उस भले सिख ने इनको बताया कि यहां संस्कृत की कोई पाठशाला तो नहीं है, पर एक साधु संस्कृत अवश्य पढ़ाते हैं। इनके द्वारा वहां जाने की इच्छा प्रकट करने पर उस भले आदमी ने बीरमा को मंगलराम डावड़ा नामक एक बालक के साथ साधु के पास पहुंचवा दिया। साधु महाराज उस समय शहर से आई भिक्षा का भोजन कर रहे थे। भोजन के बाद, उन्होंने बीरमा से बातें की। उनकी इच्छा जानी और वहां ठहरे आठ दस संतों के साथ उनको भी भोजन कराया। भोजन के बाद, बीरमा ने दूसरे साधुओं से बातें कीं। उन्होंने सलाह दी—अमृतसर जाकर संस्कृत पढ़ो। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि तुम साधु हो जाओ। उनका तर्क था कि जाट को न तो कोई संस्कृत पढ़ायेगा और न खाने-पीने को देगा साधु बन जाने पर, ये सारी परेशानियां दूर हो जायेंगी।

अब बीरमा के सामने बड़ी जटिल समस्या उठ खड़ी हो गई थी। साधु वह होना नहीं चाहते थे। समाज से अलगावित साधुओं के जीवन से उनको घृणा थी। जाट का बेटा होने के कारण बिना मेहनत किए खाना भी उनको रुचिकर नहीं था लेकिन साधु बने बिना संस्कृत का अध्ययन भी असम्भव था। यही नहीं, आगे चलकर वह जिस सामाजिक उत्थान की कल्पना मन में किए हुए थे, वह भी सम्भव नहीं था। अतः सोच विचार करने के बाद उन्होंने संन्यासी बनकर ही अपना रास्ता तलाश करने का इरादा कर लिया और वह साधु हो गए। इस स्थिति में भी उनकी दिली ख्वाहिश पूरी नहीं हुई। समय गुजर रहा था, पर अध्ययन का सिलसिला नहीं बैठ रहा था। पेट की भूख शान्त होने का रास्ता तो मिल गया था लेकिन मानसिक भूख शान्त होने का कोई इंतजाम न था। यहीं आप बीरमा से केशवानन्द बन गए थे।

एक वर्ष वह साधुओं के साथ भटकते रहे थे तभी प्रयाग में कुम्भ के मेले की चर्चा होने लगी थी। आपने भी सोचा कि कुम्भ में जाया जाय, वहां प्रयागराज में स्नान भी होंगे और विद्वान साधु-संत तलाश करके अध्ययन की व्यवस्था भी हो

सकेगी। इस इरादे के साथ, वह फजिल्का स पैदल चलकर दिल्ली आए। यह बात, सवत 1962 के जेष्ठ माह की है। पन्द्रह दिन म यह यात्रा पूरी हुई। हालाकि उन दिनो दिल्ली म साधुओ को खाने पीने के लिए काफी मिलता था, पर आपका मन दिल्ली मे नही रमा। दिल्ली से आप खुर्जा आए। यहा से अलीगढ पहुचे और अलीगढ स हाथरस। अब स्वामी जी कृष्ण की भूमि म थे, जो सतो तथा विचारको के लिए हमशा प्रेरणा का स्रोत रही है। हाथरस से आप मथुरा आए। मथुरा के दर्शनीय स्थानो पर गए, सभवत यही कृष्ण के क्रान्तिकारी योगी के रूप को समझा और एक इरादा लेकर आगरा आए। यहा दयालबाग देखने गए, जहा स राधास्वामी मत का उदय हुआ था। यही आपकी भेंट आगरा के एक सिन्धी सेठ स हुई जिसने पुण्य कमान क प्रलोभन म इनक लिए इलाहाबाद का टिकट खरीद दिया और आप रेल स यात्रा करके प्रयागराज पहुच गए।

यहा स्वामी केशवानन्द न सस्कृत भाषा तथा विद्या के केंद्र काशी जाने का निश्चय किया और वह बनारस चले गए। बनारस से फिर लौटकर प्रयागराज आए। इन दिनो स्वामी हीरानद अवधूत की झोपडिया गगा-तट पर लग गई थी, आप भी उनम रहने लगे। यही एक नाथ साधु के पास एक घट बैठकर गीता पढने लगे। महात्मा हीरानन्द के यहा आत्म पुराणकी कथा होती थी। स्वामी केशवानन्द का उच्चारण ठीक था। अत इनको कथा-वाचक का काम मिल गया और अच्छे कथा वाचक के रूप म उनकी प्रशसाए होन लगी। थाडे दिन बाद, उनके गुरुजी भी वहा आ गए। श्रोताओ तथा महता न, स्वामी केशवानन्द जी के गुरु से उनके कथा वाचक के अच्छे ढग की तारीफ की। लोगो न कहला गुरू कर दिया था कि उनके बीच मे दूसरा केशवानन्द आ गया है।

## हरिद्वार की ओर प्रस्थान

कुम्भ क बाद, प्रयागराज स इनक गुरु इनको फजिल्का ले आए। सस्कृत भाषा तथा ज्ञानाजन की उत्कट अभिलाषा दखकर गुरुजी ने इनका हरिद्वार भेज दिया। हरिद्वार म गगा की रेती और हरि की पौडी पर गगा की पावन धार तो थी, पर ढोग तथा धार्मिक आडम्बर के कारण सच्चे धम तथा ज्ञान पिपासा की शान्ति के सच्चे साधना का अभाव था। अत साधु वेश मे छिपे ईमानदार जाट का मन, हरिद्वार से विरक्त हो गया। वह चल पडे और अमृतसर पहुचे। यहां लघु कौमुदी पढने का अवसर मिला और इसके बाद देशाटन की अभिलाषा पूरी करने के लिए सिन्ध चले गए। यहा आप साधु वेला नामक तीर्थ मे ठहरे और तत्पश्चात जकोबाबाद, क्वटा तथा चमन की यात्रा पर निकल गए। क्वेटा म, उनकी भट एक पुराने सिख से हुई जो आर्य-समाजी विचारधारा का था और खद्दर पहनता था। उसने स्वामी केशवानन्द को देशानुराग, स्वदेशी तथा लोकोद्धार

के प्रति आकर्षित किया।

क्वेटा से फिर जकोबाबाद, शिकारपुर तथा सक्खर होते हुए मुलतान पहुंचे और फिर फजिल्का। यहां वह आठ दिन बीमार भी रहे। ठीक होने के बाद, बागड़ चले गए। वर्षा अधिक होने के कारण सतलुज में बाढ़ आ गई थी। फजिल्का में सैकड़ों मकान बाढ़ में गिर गए थे। इनका आश्रम भी क्षतिग्रस्त हो गया था। बागड़ से रोहर, भादरा, रतनगढ़ बीकानेर आदि शहरों को देखा। इसी बीच उनके गुरुजी का स्वर्गवास हो गया था अतः फजिल्का के आश्रम में आए। गुरुजी के अनेक शिष्य थे पर उनका सर्वाधिक विश्वास स्वामी जी पर ही था। इसीलिए स्वर्ग-वास से पूर्व आश्रम की गद्दी का उत्तराधिकारी इनको ही बना दिया था। गुरु जी का भण्डारा करने के बाद, आप फिर भ्रमण पर निकल गए। भ्रमण पर जाने से पहले, आश्रम में वेदान्त पुष्प वाटिका नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना कराई। इस पुस्तकालय को धर्म, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व विषयक पुस्तकों से सम्पन्न किया। सन 1908 से 1910 तक आपने फाजिल्का आश्रम को ज्ञान, धर्म नियम, संयम तथा स्वच्छता का केन्द्र बनाने का प्रयास किया।

सन् 1912 में, आपने फजिल्का में संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। यहां से उनका ध्यान बदला और वह साधु आश्रम तथा पाठशाला के क्षेत्र से बाहर निकलकर, राष्ट्रीय क्षितिज पर उठते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर आकर्षित होने लगे। 1918 में रौलट एक्ट के विरोध में सारे देश का वातावरण गर्म था। सरदार भगतसिंह असेम्बली में बम्ब फेंककर देश में जोश तथा अंग्रेजों के प्रति क्षोभ पैदा कर चुके थे। स्वामी जी भी देशभक्त के रंग में डूबने लगे। लेकिन देश सेवा का, आपका तरीका, कुछ भिन्न प्रकार का था। आपने अबोहर में 'चलता-पुस्तकालय' स्थापित किया, ताकि उसका लाभ देहात में रहने वाले किसानों को मिले। इस पुस्तकालय की स्थापना के समय, आपने कहा था— 'मेरे हृदय में सदा से यह बात रही है कि *किसान लोगों में जागृति फैले ताकि वे* अपने दुःखों के निवारण के लिए स्वयं प्रयत्नशील हो सकें।"

## अछूतोद्धार की ओर दृष्टि

स्वामी जी बचपन में देख चुके थे कि छोटी जाति के ग्वाला का पानी, प्यास होने पर भी, ऊंची जाति के बालक नहीं पीते थे। यही बात, उनको संगरिया के छात्रों तथा अध्यापकों में भी दिखाई पड़ी। इसके निवारण के लिए आपने न केवल प्रचार ही किया, वरन् स्वयं अपने पास एक हरिजन को रख लिया, जो विद्यापीठ में मेहमानों का सत्कार करता था। इस तरह स्वामी जी व्यावहारिक स्तर पर सवर्ण और हरिजन का भेद मिटा रहे थे।

## 'साहित्य सदन अबोहर' की स्थापना

स्वामी जी का दिमाग हर ओर से जनता की सेवा करने पर लगा था। साहित्य को वह जनता में जागृति लाने का साधन समझते थे। अतः अनेक स्थानीय दानदाताओं के सहयोग से अबोहर में एक साहित्य सदन की स्थापना कराई। यह बात सवत् 1966 की है। जब जेल चले गए तो साहित्य-सदन का काम ठप्प पड़ गया। अतः जेल से वापस आने पर फिर आपने इसको पुनर्जीवित किया। सवत 1986 तक यहा 3763 पुस्तक हो गई थी। यही से चलते-फिरते पुस्तकालय का जन्म दिया गया था। पुस्तकालय के अतिरिक्त एक विशाल वाचनालय की भी स्थापना आपने कराई, जिसमें लगभग 125 पत्र-पत्रिकाए आती थी। एक सग्रहालय भी स्थापित कराया गया, जहा दुर्लभ पुस्तके, चित्र तथा सिक्को का सग्रह कराया गया था। यहीं दीपक नामक एक प्रेस की स्थापना कराई गई, जिससे 'दीपक' नामक मासिक पत्र प्रकाशित कराया गया। इसी प्रेस से, 'ग्राम सुधार नाटक', विश्वधाय, ईसपनीति 'निकुज' तथा 'बालगोपाल' नामक पुस्तको का प्रकाशन भी कराया।

यहीं से राष्ट्रभाषा के प्रचार का काय भी प्रारम्भ किया गया। साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा पजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी परीक्षाओं का केन्द्र भी साहित्य सदन को बनवाया गया। सन् 1941 में आपके प्रयत्नों से अबोहर में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, जिसके स्वागताध्यक्ष आप थे और सम्मेलन के अध्यक्ष प० अमरनाथ झा थे। यह ऐतिहासिक सम्मेलन स्वामी केशवानन्द की देन था।

## असहयोग-आन्दोलन के मैदान में

स्वामी केशवानन्द कोरे देशभक्त तथा पद-लोलुप राजनीतिक नेता नहीं थे। उनके मन में देशभक्ति की धारा बहती थी, वह देश को शीघ्र स्वाधीन हुआ देखना चाहते थे। अतः खुद को असहयोग आन्दोलन से अलग न रख सके। वह लोक से विरक्ति का ढोंग करके रूढ़िवादी धर्म तथा सन्यास के मार्ग पर चलने वाले साधु नहीं थे। उनका सन्यास लोक के प्रति नहीं, लोक में फैली बुराइयों तथा गुलामी के साथ था। इसलिए कांग्रेस में बिना कोई पद लिए वह देहात में अंग्रेजी साम्राज्य विरोधी प्रचार पर जुट गये थे। फलतः आपको सन् 1921 में दो साल के लिए जेल की यात्रा करनी पड़ी। दूसरी बार वह सन् 1930 में जेल गए। उनका काम था, देहात में स्वतत्रता का सदेश ले जाना और वहां से सत्याग्रहियों के रूप में स्वयंसेवक लेकर लौटना। आपकी

प्रभाव और निर्भीकता से सरकार घबरा उठी थी, पर वह स्वामी जी का गला बन्द न कर सकी। अंग्रेजी राज्य के भारत से विदा होने पर आपने यहां से अंग्रेज और अंग्रेजों को विदा करके राष्ट्र और राष्ट्रीयता के विकास की साधना का व्रत लिया।

## एक व्यावहारिक मत

इस देश में साधु तथा संतों को मुफ्त में माल खाने को मिलता है। वे बिना मेहनत किए गुलछर्रे उड़ाते हैं। लेकिन स्वामी जी इसके विरोधी थे। उनकी खान-पीन की आदत देहाती किसानों की-सी थी। दिल्ली में भी वह तंदूर की सूखी रोटियों को दाल के साथ खाकर तृप्त हो जाया करते थे। सादा भेष तथा साधारण भोजन ही उनकी सफलता के स्रोत थे। वचन और कर्म की एकता उनकी शक्ति थी और जनता की सेवा उनकी साधना थी।

उनका कोई एक परिवार नहीं था। सारा समाज, सारा देश उनका परिवार था। उसी की उन्नति उनकी साधना का मूल मंत्र था। शिक्षा को वह उन्नति का मार्ग मानते थे। अतः उनका सारा बल शिक्षा संस्थाओं की स्थापना अथवा पहले से वर्तमान संस्थाओं की प्रगति पर केन्द्रित था। ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया के साथ उनका यही सम्बन्ध था।

## राजनीतिक आन्दोलन से सांस्कृतिक क्रान्ति तथा सामाजिक संरचना की ओर

राजस्थान और उसकी सीमा से लगे पंजाब के इलाके में घूमकर स्वाधीनता सैनिक तैयार करने के दौरान स्वामी केशवानन्द ने राष्ट्रीय भावना का तूफान ला दिया था। उनकी सरगर्मी को देखकर सरकार तथा उसकी पुलिस बेहद परेशान हो गई थी। इसीलिए वह दो बार जेल की यात्रा कर चुके थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के अभिन्न अंग तथा सहयोग आन्दोलन के जुझारू सिपाही होते हुए भी, स्वामी केशवानन्द को, यह विश्वास हो गया था कि इन सबसे किसान के भाग्य का परिवर्तन हो सकेगा। आजादी के बाद, भारत का पूंजीपति अधिक मालदार हो जायेगा, प्रशासन की कुर्सी पर बैठा अफसर एक नये वर्ग का निर्माण कर लेगा, जिससे आम आदमी का कोई भला नहीं होगा, किसान अपनी हालत को बदलने में असमर्थ रहेगा। यह बात उन्होंने भले ही कही तथा लिखी न हो, पर उनके कामों से ऐसा अवगत होता है।

उनके लिए देश की आजादी का मतलब, किसान समाज की बहबूदी,

अशिक्षा से उसकी मुक्ति और अधविश्वासो से उसके छुटकारा से था। अत उ होने देहात म, प्राविधिक तथा औद्योगिक शिक्षा के केन्द्र खोलने की नीति बनाई। इसी नीति का परिणाम ग्रामोत्थान विद्यापीठ था। इस विद्यापीठ का ज म 9 अगस्त सन 1917 म हनुमानगढ म हुआ था। क्षेत्र मलेरिया प्रधान था, अत स्कूल का सेठ बजरदास की धमशाला सगरिया मे जनवरी सन 1918 के दिन लाया गया। सात वष तक, सस्था स्थानीय दानदाताओ तथा शिक्षा प्रेमियो के सहयोग स चली। इसका काम, दूसरे ग्रामो म भी छात्र तथा छात्राओ के लिए प्राइमरी पाठशालाए चलाना था। सन् 1925 तक सस्था जडे जमा चुकी थी, जनता म अपनी अच्छाई तथा महत्त्व का डका बजा चुकी थी। फिर भी एक हद तक लडखडा रही थी। सन 1932 मे स्वामी जी इसके साथ जुडे।

अपने जुडने के साथ, स्वामी जी ने 'कायापलट' नामक एक विज्ञापन निकाल कर सस्था के भवनो का जीर्णोद्धार कराया, फरनीचर बनवाया। सन 1938 मे सग्रहालय स्थापित कराया, 1944 मे 'त्रैवार्षिक शिक्षा प्रसार योजना' प्रारम्भ कराइ। 1950 मे प्रेस और महिला आश्रम की स्थापना कराई, वृक्ष लगाए। सन 1942 मे रजत जयती मनाई, हाई स्कूल स्थापित कराया, सिलाई-रगाई, बढइ गीरी कताई बुनाई के प्रशिक्षण की व्यवस्था कराई, व्यायाम शाला स्थापित की, आयुर्वेद विभाग खुलवाया, सगीत विद्यालय शुरू कराया, अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालय खुलवाया, स्त्री शिक्षा की व्यवस्था की, मरुभूमि सेवा-काय की योजना चलाई, कृषि महाविद्यालय प्रारम्भ कराया, और इस प्रकार सगरिया के विद्यालय को, इस प्रकार सम्पन्न करन की कोशिश की ताकि वह हर तरह से ग्रामीण क्षेत्र से आए बालको को आधुनिक आवश्यकताओ का पूरा करने म समथ हो सके।

यह कहने म कोई अतिशयोक्ति न होगी कि जिस प्रकार मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस और रवी द्र नाथ टैगोर ने शाति निकेतन की कल्पना द्वारा भारत के भावी छात्र की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कल्पना की थी, उसी प्रकार स्वामी केशवान द ने ग्रामोत्थान विद्यालय सगरिया द्वारा, राजस्थान की किसान जनता के, आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार विकास का स्वप्न देखा था। उसी स्वप्न का साकार रूप है, सगरिया का शिक्षा-सस्थान।

स्वामी केशवान दजी के इस मनोराज्य को साथक सशक्त और किसान जनता की बहबूदी का कारगर हथियार बनाने के लिए निहायत ईमानदार तथा कमठ पुलिस अधिकारी डा० ज्ञानप्रकाश पिलानिया ने सगरिया म स्वामी केशवान द ट्रस्ट बनाकर स्वामीजी के आदर्शों को आगे बढाने की प्रतिज्ञा ली है। मेरा विश्वास है, उनको सफलता मिलेगी। राजस्थान ही नही, दूसरे प्रान्तो के समाज प्रेमियो का भी कत्तव्य है कि वे डॉ० पिलानिया को सहयोग दे।

## ससद मे स्वामीजी के कदम

सन 50 म राजस्थान काग्रेस कमेटी न तय किया था कि राजस्थान म स्वामी केशवानन्दजी को राज्य सभा के लिए मनोनीत किया जाय। उसन इनके नाम की सस्तुति केन्द्रीय काग्रेस कमेटी के लिए की और उसन सहप इसका अनुमोदन कर दिया। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन न इस चयन पर सोल्लास कहा था कि अब ससद म एक दाढी और चमकेगी। स्वामीजी मध्यमूर्ति क महानुभाव थ। मुझे सन् 1953 म उनके दशन करन का अवसर मिला था। इसका श्रेय प० बनारसीदास चतुर्वेदी को है। उन दिनो चतुर्वेदी जी भी राज्य सभा के सदस्य थे और नाथ एवेन्यू मे रहत थ। चतुर्वेदीजी का साहित्यिको, समाजिक कायकर्ताओ, देशभक्तो, क्रान्तिकारियो और प्रवासी भारतीयो के साथ विशेष लगाव था। म उनके पास बैठा हुआ था, उसी समय स्वामीजी पधारे। चतुर्वेदीजी न उनका मुझ परिचय दिया। स्वामीजी ने अपने क्वाटर म चलने का निमत्रण दिया। मुझम साहस न था कि निमत्रण को अस्वीकार करता। हम गए और बातो के दारान मालूम हुआ कि उनकी एक चिंता भारत के किसान की तरक्की थी। वह हर समय किसान के जीवन मे बदलाव लाने की बात सोचते थे। उनको न खाने का शौक था, न पहनने का। उनका शौक था, गरीबों के घरों को खान तथा पहनन की चीजो स भरने का, उनका शौक था देहात मे फैली अशिक्षा, गरीबी तथा अध विश्वास को दूर भगा देने का। काश सरकारी पदो पर बठे काग्रेसी तथा गर-काग्रेसी लोगो म भी आज यह भावना होती तो हमारा देश अब तक जहालत, गरीबी, ऊच नीच की भावना, साम्प्रदायिक भेद भाव, क्षेत्रीय सकीणता और सकीण प्रान्तीय भावना से अवश्य मुक्त हो गया होता।

## स्वामीजी का अभिनन्दन

*सन् 1957 म जिस समय देश म 1857 के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन की* शताब्दी मनाई जा रही थी, उस समय ठाकुर देशराज अधीना (भरतपुर) न प० बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा और स्वामीजी के श्रद्धालुओ के सहयोग स एक अभिनन्दन ग्रथ भट किया था। यह उस महान् विभूति का सम्मान अवश्य था, पर इसमे हमार सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल, गाधी, नहरू और स्वामी केशवानन्द की शहादत मौजूद है, हमको तब तक चन स नही बैठना है जब तक इसान पर इसान के शोषण का अन्त न कर दें, जब तक दुनिया से लडाई और भेद भाव को न मिटा दें, जब तक ऊच और नीच के अतर को दूर न कर दें, जब तक साम्प्रदायिक वमनस्य को दूर न भगा दें

और जब तक भिन्न जाति तथा धर्म के आदमी को राष्ट्रीय एकता के धागे मे न पिरो दें। ऐसा करने के बाद ही इन महान आत्माओं के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा प्रकट हो सकती है।

## स्वामीजी की अन्तिम यात्रा

सन 1972 म स्वामी केशवानन्द अपनी सस्था के लिए धन एकत्र करने की दृष्टि स मद्रास गए थे। सितम्बर 1972 म वहा मिली रकम का ड्राफ्ट भेजकर सगरिया के लिए चल दिए थ और 13 सितबर 1972 को दिल्ली आ गए थे। माग मे ही उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था। उनके साथ गए विद्यानन्दजी कुम्भाराम आय का मकान खोजने निकल और स्वामीजी आराम के लिए गोल डाकखान के पास एक पेड के नीचे लेट गए। विद्यानद की प्रतीक्षा करने क बाद स्वामी स्वय उठे और विट्ठल भाई पटल हाउस पहुचे, वहा स ताल कटोरा माग के चौराहे पर आये। शायद यह पूरा भ्रमण पदल हुआ होगा, अत वह बहुत थक गए और आराम के लिए ताल कटोरा माग के फुटपाथ पर, पुरान चुनाव-कार्यालय के पास एक पड के नीचे सो गए और फिर कभी नहीं जगे। विद्यानन्द जब उनको खोजते खोजते उधर स गुजरे तो स्वामी जी को चिरनिद्रा म वहा सोए पाया। श्री रामनिवास मिर्धा क रुचि लेने पर पुलिस न सगरिया विद्यापीठ को वायरलेस से स्वामीजी के स्वगवास की सूचना दी और वहा स कुछ सज्जन आकर उनके पार्थिव शरीर को सगरिया ले गए और उनकी भस्म भी इस सगरिया के काम आ गई।

# मेजर जयपाल सिह

मेजर जयपालसिह के साथ, मेरे तथा मेरे परिवार के बहुत नजदीकी सम्बन्ध थे। भूमिगत जीवन खत्म करने के बाद अपने इलाके म अपने ही विपरीत तथाकथित राष्ट्रवादी कुछ काग्रेसी कार्यकर्ताओ द्वारा किए गए घृणित प्रचार को देखकर, वह प्रैक्टिकल राजनीति और चुनाव की ओर से अलगावित होकर मार्क्सवादी विचारधारा के सैद्धान्तिक कार्यक्रमो के साथ प्रतिबद्ध बन दिल्ली रहने लग गए थे। वह मुझे बुलाते थे देश विदेश की राजनीति पर विचार करते थे। नये भारत के आर्थिक तथा सास्कृतिक विकास की काग्रेसी विफलता पर क्षुब्ध होते थे, सी० पी० आई० की भूमिका पर चिंताए व्यक्त करते थे, देश पर पूजीवाद के बढते खतरे से हम सावधान करते थे, भारत की एकता, शान्ति और सुरक्षा को तोडने के लिए अग्रेजो द्वारा दिए गए हथियार तथा धम प्रचारको द्वारा किए गए भारत विरोधी प्रचार पर सावधान, हाल की चेतावनी देते थे और देश मे मार्क्सवादी चिंतन के विकास की आवश्यकता पर बल देते थे।

मेरे बौद्धिक विकास को नजर म रखकर, उन्होने मुझे भारत के प्रख्यात सी० पी० एम० नेता श्री ज्योति बसु तथा प्रमोददास गुप्ता से मिलने के लिए भेजा था। देश के अन्य अनेक विचारको से मिलाया था। आपने त्रिपुरा, आसाम तथा तेलगाना के राजनीतिक आन्दोलनो म वहा की जुझारू जनता के साथ एक होकर लडाई लडी थी। मै उनसे जब अपनी आत्मकथा लिखने का आग्रह करता था, तो वह प्राय यह कह कर मुझे चुप कर दिया करते थे कि मेरा अपना कुछ भी नही है, जो कुछ है, वह पार्टी का है। मैं अनुभव करता हू कि उनके सघषमय जीवन की अनेक घटनाए काल के अधकार मे दब गई है, उनके प्रकाश म आने की जरूरत है ताकि इस देश के महान् क्रान्तिकारी किसान का इतिहास सामने आ सके।

भगत सिह और मेजर जयपाल सिह दोनों किसान के बेटे थे। एक पजाब की भूमि पर जन्मा था, दूसरा गगा यमुना के दो आब मे, एक ने बचपन म बदूकें बोई थी, दूसरे न गाव म भैंसें चराई थी, एक अग्रेजो की जेलो म रहा था, दूसरे न

सेना म कमीशन पाया था, एक न अंग्रेजो पर गोली दागी थी, दूसरे न युद्ध के मार्चे पर लड रही अंग्रेजी सेना के लिए हवाई जहाज से रसद पहुंचाने की टैक्नीक का विकास किया था, लेकिन दोनो का अपने देश तथा समाज से बहुत गहरा लगाव था दोनो ही किसान तथा मजदूर की बहबूदी के पक्षधर थे और दोनो ही किसान मजदूरो की प्रगतिशीलता के आधार पर भारत के नव निर्माण की कल्पना म डूबे थे दोनो को अंग्रेजो से घृणा थी, दोनो ही साम्राज्यवाद का अन्त करने के लिए लालायित थे, दोनो ही इन्कलाब के पुजारी थे और दोनो ही दो भिन्न परिस्थितियो मे रहते हुए भी लेनिन के भक्त थे। एक की शिक्षा केवल एफ० ए० तक हुई थी और दूसरे की एम० ए० तक लेकिन दोनो का असली ज्ञान शिक्षा के बाद विकसित हुआ था। एक का अध्ययन जेलो मे हुआ था, दूसरे का सेना के बैरको मे, दोनो ने अंग्रेज विरोधी संगठन को खडा किया था, एक ने अंग्रेज अफसरो की नाक के नीचे सेना के अफसरो को अंग्रेजो को मार भगाने के लिए एक क्रांतिकारी संगठन मे बांधा था दूसरे ने क्रांतिकारियो के संगठन को नयी दिशा तथा शक्ति प्रदान की थी। दोनो म सिर्फ अन्तर यह है कि पहला व्यक्ति यानी सरदार भगत सिंह सिर्फ तेईस वर्ष की उम्र म अंग्रेज साम्राज्यवादियो की फांसी पर लटककर दुनिया के शहीदो के शिरोमणि बन गये और दूसरा अंग्रेजो की खुफिया पुलिस तथा सेना की पुलिस की आंखो म धूल झोककर भारत की आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति म बदलाव लाने के लिए संघर्ष करता रहा दोनो ही भारत के ऐसे लाल थे, जिन पर गर्व किया जा सकता है।

मेजर जयपाल सिंह का जन्म, जिला मुजफ्फर नगर के गाव बुरमानी मे सन् 1906 की 15 जुलाई को हुआ था। इनके पिताजी का नाम बोहरण लाल था। पिता जी फौज मे नौकरी करते थे। इसलिए घर पर मा की देख रेख मे वह कुछ दिन पले। शायद इन्ही दिनो आपको भैंसें चरानी पडी थी। भैंसें चराते समय बालक जयपाल सिंह ने किसानो की गरीबी देखी थी उनका अभाव भरा जीवन देखा था, उनकी आपसी लडाई तथा फूट देखी थी और देखा था गाव के बढइयो नाइयो, कुम्हारो और जुलाहो की बेकारी म डूबी फौजें। इसके अलावा आपने देखा था कि गरीब जाट किसान तो अपने बच्चो को फौज म भेजकर, यानी भाडे के सिपाही बनाकर, अपनी गरीबी दूर करने का सपना देख लिया करते थे लेकिन दूसरी कौमो के बालकों को तो अपनी रोजी रोटी के लिए दूसरो की चिरौरिया करनी पडती थी। यह देखकर बालक जयपाल सिंह का मन क्षोभ से भर जाया करता था। जब कर्जे मे पिसते किसानो को वह देखते और इस सबके कारणो पर विचार करते तो उनको बडी तकलीफ होती। इतनी मेहनत करने पर भी किसान भूखा क्यो है, जब यह सवाल दिमाग मे आता और उसका सही उत्तर नही मिलता तो फिर क्रोध आता और वह क्रोध निकलता भैंस के ऊपर। वह

गोबर से सनी अपनी लाठी भैंस की पीठ पर जमाते। बाद में निर्दोष को पीटने की व्यथा से फूट फूटकर रोते।

इस तरह भय और अभाव भरे वातावरण में उनका बचपन बीत रहा था। बीस के दशक का समय, इस दौरान उनके परिवार की गरीबी, गांव वालों की दुःख दर्द भरी कहानियां, उनके कोमल एवं संवेदनशील हृदय पर कुछ ऐसे जख्म छोड़ गईं जो हमेशा टीसते रहे और उसके दम में आराम तथा सैनिक अफसरों के सम्पन्न वातावरण में भी उनको शांत नहीं बैठने दिया।

उनको रह-रहकर याद आता था कि गरीबी में दिन काटते बाबा की गुर्राहट को सहन करने में असमर्थ पिता, घर और परिवार को छोड़कर फौज में चले गए थे और वर्षों तक मां की सिसकियां बन्द नहीं हुई थीं। घर की देखभाल तथा बच्चे को पालकर उनको सुख मिलता था, लेकिन एक दिन फौजी पिता ने मां का वह सुख भी छीन लिया था। वह बालक जयपाल सिंह को अपनी बैरक में ले आए थे। फौजी अफसरों को देखकर, उनको शिक्षा के महत्त्व का पता लग गया था। शायद मन में सोचते रहे होंगे कि अगर वह भी अधिक पढ़े लिखे होते तो अफसर बनते। इसलिए बालक जयपाल को बड़ा अफसर बनाने की इच्छा से पढ़ाने के लिए अपने पास ले आए थे। मजबूरी में इनको पिताजी के पास सिपाहियों की बैरकों में रहना पड़ा जिनके विषय में स्वयं मेजर जयपाल सिंह की राय है—"मेरे सामने वह प्रक्रिया स्पष्ट थी जिसके चलते जाट किसान, जिन्हें ईमानदारी से काम करने की आदत होती थी, कैसे पशुता भरे चाबी के खिलौने बन जाते थे। धीरे-धीरे उनके भीतर के वे तमाम बुनियादी मानव मूल्य मर जाते थे जो उन्हें अपने गांवों में पूरी ईमानदारी से मेहनत करने की प्रक्रिया में प्राप्त हुए थे। अपने मुजरिम मालिकान की शह पर वे जंगली दरिन्दों की तरह भारतीय देशभक्तों पर टूट पड़ते थे। बर्तानवी साम्राज्यवाद ने मेरे देश के लोगों को इस तरह 'सभ्य' बना दिया था।"

विशेषता यह है कि जयपाल सिंह बचपन तथा जवानी के काफी दिन इन बैरकों में रहे थे, समय के साथ-साथ अंग्रेज और उनके साम्राज्य के प्रति उनके मन में घृणा बढ़ती गई। भोले भाले भारतीयों को गुलाम तथा दरिंदा बनाने की, अंग्रेजी साम्राज्य की जो प्रक्रिया जयपाल सिंह ने देखी थी, उसकी झलक हमारे राष्ट्रीय नेताओं को नहीं लगी थी। लेकिन, जयपाल सिंह न गुलाम बने और न दरिंदा। उन्होंने तय किया था कि अंग्रेजों का अफसर बनकर ही, अंग्रेजों की जड़ें काटी जायें। इसलिए वह अंग्रेजों के नहीं, बल्कि उस अंग्रेज कौम के घोर दुश्मन बन गए जो दूसरे देशों के लोगों को सभ्यता सिखाने के नाम पर हैवान बना रही थी एवं गुलामी में जकड़कर उनका आर्थिक शोषण कर रही थी। छह वर्ष तक इन बैरकों में रहकर, बालक जयपाल सिंह ने देखा कि सिपाही गंदी मजाकें करते

हैं, समलैंगिक यौन संपर्क रखते हैं, पशुओं से यौन संपर्क रखते हैं, जमादार या मैस के लाला की बच्चियों को अपनी वासना का शिकार बनाते हैं।

इससे एक ओर उनके मन में अंग्रेजी सभ्यता से घृणा हुई तो दूसरी ओर भारतीय सैनिकों की इस गुलाम मनोवृत्ति से। वह रजाई में लिपटे क्रांतिकारियों का साहित्य भी पढ़ते रहे। काकोरी षड्यंत्र केस के क्रांतिकारियों की यातनाएं पढ़कर उनकी आंखों से आंसुओं की धाराएं बहतीं और दिन के अर्दली के आने से पहले ही बत्ती बुझाकर सो जाते। उस समय दो विरोधी विचार उनके मानस से टकरा रहे थे। शामली में नमक कानून भंग के सिलसिले में आपने देखा था कि बीस हजार आदमियों की भीड़ को पांच पुलिस के सिपाहियों ने तितर बितर कर दिया था। ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध का यह रास्ता सुख और शांति का था और क्रांतिकारियों का रास्ता विपत्ति तथा संघर्ष का था, फिर भी उन्होंने रास्ता खतरनाक चुना। अंग्रेजों की फौज में रहकर भी, अंग्रेजों के खिलाफ फौजी बगावत का।

यहां सवाल उठ सकता है कि फौजी क्रांति का रास्ता उन्होंने क्यों चुना? इसका उत्तर यही है कि वह कांग्रेस पर देश के पूंजीपतियों तथा उच्च वर्ग का अधिकार देख रहे थे और उनसे उनको आशा नहीं थी कि वे देश की बहुसंख्यक जनता—किसान, मजदूर तथा मध्य वर्ग का कोई हित कर सकेंगी। दूसरे वह देख रहे थे कि कांग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन फिरकापरस्ती तथा साम्प्रदायिकता का शिकार भी होता जा रहा है और उनके दिमाग में कल्पना यह पैदा होती रही थी कि सैनिक विद्रोह न तो साम्प्रदायिक होगा और न फिरकापरस्त। वह किसी राजनीतिक दल का सहारा लेकर पूरा होगा, इसलिए उन्होंने भारत के कई राजनीतिक दलों से सम्पर्क भी किया था। जयप्रकाश नारायण तथा डॉ० लोहिया से भी सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया गया था। इससे साफ जाहिर होता है कि उनके सैनिक विद्रोह की कल्पना पाकिस्तान, बंगलादेश, घाना तथा अन्य देशों के सैनिक विद्रोह से भिन्न थी, जहां विद्रोह करने वाले स्वयं सत्ता के अधिकारी बन बैठे हैं। इसके विपरीत वह सत्ता प्रगतिगामी राजनीतिक दल को देने के पक्ष में थे। सेंट जान्स कॉलिज आगरा में पढ़ते हुए बंगाली युवकों की वीरता उनको आकर्षित कर रही थी। कल्पना दत्त, गणेश घोष और राम प्रसाद बिस्मिल की कहानियां मन को मोह रही थीं। शचीन्द्र नाथ सेन की पुस्तक 'बन्दी जीवन' उन पर गहरा प्रभाव डाल रही थी और उनका मन क्रांतिकारी साहित्य पढ़ने, आगरा के क्रांतिकारी अड्डों पर बातचीतों में शामिल होने में लगा करता था। इसी बीच आपने एम० ए० पास कर लिया। इसके साथ ही, आपने फैसला कर लिया था कि फौज में रहकर ही अंग्रेजों की जड़ काटेंगे।

सेण्ट जा स कालिज आगरा म पढते हुए आपके सम्पक मेरे पिता श्री भगवान सिह फौजदार के साथ स्थापित हुए जो उन दिनो आगरा कालिज स्टडन्ट्स यूनियन के अध्यक्ष थे, जो प्रगतिशील विचारधारा के लोगो के साथ उठते बैठते थे, जो तागा यूनियन के गठन के लिए भाग दौड कर रहे थे। रेलवे मजदूर सगठन के निर्माण म भाग ले रहे थे, और जो आगरा के छात्रो म मजदूर सगठन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के कायक्रमो का लोक प्रिय बनाने के लिए जी-तोड कोशिशो म लगे थे।

उन दिनो, आगरा का सेण्ट जा स कालिज राजनीतिक एव क्रान्तिकारी चेतना का केन्द्र था। मेजर जयपाल सिह सेण्ट जान्स के छात्र थे और भगवानसिह फौजदार आगरा कालिज के। इ ही दिनो यहा गुलाम रब्बानी ताबा (पद्मश्री प्राप्त उर्दू शायर) और हिन्दी के प्रगतिशील लेखक नेमिचन्द्र जन भी मौजूद थे। इनका एक प्रगतिशील सगठन था जहा य अध्ययन के अतिरिक्त राष्ट्र और समाज की समस्याओ पर सोचते थे और यह सगठन इस नतीजे पर पहुच रहा था कि भारत आजाद तो होगा, पर अभी आर्थिक समता दूर की चीज है। आर्थिक बहबूदी के अभाव म राजनीतिक स्वाधीनता अपूण है 'ऐसा इस वग का चिन्तन भी था। मेजर जयपालसिह और भगवानसिह फौजदार दोनो का सबध किसान जीवन के साथ था, अत इनकी नजरों मे आर्थिक बहबूदी रहित आजादी का विशेष महत्त्व नही था। वे चाहते थे, अग्रेजो से देश की राजनीतिक स्वाधीनता के साथ देश की आर्थिक सम्पन्नता छीन लेना। इस अभाव मे दोनो की नजरो म स्वाधीनता का विशेष महत्त्व नही था।

उन दिनो द्वितीय विश्व-युद्ध के बादल मडराने लगे थ। हिटलर मिसोलिनी तथा तौजो के रूप म उभरता साम्राज्यवाद इग्लैंड और अमेरिका के पूजीवाद के खिलाफ जबदस्त चुनौती बनता जा रहा था। ये दोनो शक्तिया टकराने को थी। दोनो का उद्दश्य दुनिया के अविकसित देशो को गुलाम बनाए रखकर उनका आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण करना था। सिर पर सवार इस युद्ध का मुकाबला करने के लिए शिक्षित युवको को कमीशन मिल रहा था। जयपालसिह एम० ए० पास थे। हॉकी के खिलाडी थे। जाट के लम्बे तगडे बेटे थ। पिताजी 35 वष तक फौज मे नौकरी कर चुके थ। इसलिए इनको कमीशन मिल गया, यानी सैकिण्ड लेफ्टीनेंट के चुनाव मे आ गए। इसी काल म हमारे पिताश्री भगवानसिह फौजदार को भी कमीशन मिल गया था।

जयपालसिह मिलिटरी कॉलिज से कमीशन पाने के बाद अपने पिताजी से मिलने गए वे उस समय वह हैदराबाद ग्रुप ऑफ बटालियन्स के रेजिमेन्टल सेन्टर (इसको अब कुमाऊ रेजिमेट कहा जाता है) के सूबेदार मेजर थे। बेटे को सैनिक अफसर के रूप मे देखकर पिताजी का सीना गव से फूल गया था। उनकी

खुशियो का कोई ठिकाना नही रहा था। इसी खुशी की अधिकता मे पिता ने पुत्र को फौजी सलूट दिया इसलिए कि बेटे का ओहदा पिता के ओहदे से ऊंचा था। पिताजी खुश होकर बेटे को कैप्टन थिमैया के पास ले गए। यह वही थिमैया साहब थे जो बाद मे भारतीय थल सेना के जनरल बनकर रिटायर हुए थे। कै० थिमैया को लेफ्टीनेंट जयपालसिंह ने फौजी सलूट किया। वह अपने स्थान से खड़े हुए। जयपालसिंह से हाथ मिलाया। उनको बैठने के लिए कुर्सी दी। सिगरेट आफर की और पिताजी की ओर मुखातिब होकर कहा—अब तो खुश होंगे। और यह बहुत अच्छा अफसर बनेगा। इसके बाद पिताजी को मुबारक बाद दिया और जयपालसिंह से कहा—"देखो छोकरे, तुम एक अफसर हो, शैतानी मत करना।" लेकिन जयपालसिंह शरारत करने से बाज नही आए। पर उनकी शरारत किसी निर्दोष को मारने-पीटने या किसी का सामान या इज्जत लूटने वाली नही थी, वह थी देश को गुलाम और देशवासियो को शैतान बनाने वालो की जड़ें खोदने वाली।

इसके बाद पिताजी ने उनको कै० मजीद से मिलाया। उन्होंने शाम को इनको दावत दी और कान मे कहा— "अंग्रेजों पर कभी यकीन न करना। वे हमसे नफरत करते हैं।" यह मजीद साहब बाद मे पाकिस्तान की फौज मे लेफ्टीनेंट जनरल बन गए थे। अंग्रेजो से यह हमेशा लड़ते भिड़ते रहे थे। इसलिए मजीद साहब का तीन बार कोर्टमार्शल भी हुआ था। विशेष बात यह है कि मजीद साहब और जयपाल सिंह दोना 1936 मे बनारस जिले की हॉकी टीम में साथ-साथ खेले थे। इस तरह अंग्रेज विरोध उनकी नसों मे प्रवेश होता जा रहा था और मैंने उनके अंतिम क्षणा मे देखा था कि उसमे कोई कमी नही आई थी।

## आगरा कैंट की अजीब घटना

एक दिन शानदार वेशभूषा पहने जयपालसिंह आगरा छावनी के रेलवे स्टेशन में प्लेटफार्म पर खड़े किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको वहां खड़ा देखकर एक अधेड़ आयु की सड़ियल-सी महिला जो बहुत से कपड़ों में सजी हुई थी, उनके पास आई और बोली—"हाय लेफ्टीनेंट, अकेला महसूस कर रहा है, मेरी जान।" और यह कहकर उनको बाहों में लपेट लिया। इस दृश्य को एक ब्रिटिश अफसर देख रहा था। वह बोला—"मूर्खा, पागल हो गई है क्या! दीखता नहीं, यह हिन्दुस्तानी हरामजादा है।" यह सुनकर आपका गुस्सा उसी तरह उमड़ पड़ा जैसे पहले अपनी भैंस पर उमड़ा करता था। उसके बाद लात और घूंसों से आपने उस ब्रिटिश ममच्ची की जमकर पिटाई की और उसको खून में लथपथ छोड़कर आप वहां से चल दिये।

## अंग्रेजों से निरन्तर बढ़ती घृणा

एक प्रशिक्षण केन्द्र पर अंग्रेज अधिकारियों के बीच केवल पचास भारतीय अफसर थे। प्रशिक्षण आफीसर अंग्रेज था। वह भारतीयों को कमजोर, मूर्ख मशीन आदि के ज्ञान को समझने में असमर्थ सिद्ध करने के लिए इरादतन इनसे बड़े टेढ़े और कठिन सवाल किया करता था। इस चुनौती का सामना करना उनके लिए आसान भी नहीं था। बात चाहे खाने की हो, चाहे नहाने अथवा बात करने की हर मामले में वे इन भारतीयों को लज्जित किया करते थे। वे कहते—"हम तो इस असभ्य देश से परेशान हो गए।" तब नरमी के साथ जयपालसिंह कहते—"तुमको यहां आने की दावत किसने दी थी?" एक दिन, जयपालसिंह और उनके दोस्त चड्ढा हिन्दी में बात कर रहे थे। एक अंग्रेज अफसर ने अंग्रेजी में बात न करने पर उनकी भर्त्सना की। इस पर जयपालसिंह ने फेंककर उस पर गिलास मारा। कानपुर के बैरिस्टर का बेटा लेफ्टीनेंट खरे ने अपना व्हिस्की से भरा गिलास, एक ऐसे अंग्रेज अफसर के ऊपर उंडेल दिया जो कह रहा था कि हमने एक असभ्य देश को सभ्य बनाया है। खरे ने कहा था, तुमने हमको गरीबी, भूख और सूजाक दी है। एक दिन खरे को ऐसे मार्ग पर घोड़े पर चढ़कर जाने पर सजा दी गई, जिस पर अंग्रेज रोज जाया करते थे। इस भेदभाव से उनके भीतर अंग्रेज विरोधी भावना और तीव्र होती गई।

मेजर जयपालसिंह तथा अन्यों का कोर्स सन 1942 में खत्म हो गया था। तमाम भारतीय अफसरों को खराब रिपोर्ट दी गई थी। इनकी रिपोर्ट में कहा गया था कि इनमें लगन तथा पहलकदमी की कमी है। अंग्रेजों के भेदभाव भरे, पक्षपातपूर्ण तथा भारतीयों के प्रति घृणा भरे व्यवहार को देखकर, आपने अपने पठान बैरा अब्दुल को भेजकर चार भारतीय अफसरों को 10 फरवरी 1942 के दिन शाम को दावत पर बुलाया। यह दावत बन्द कमरे में हुई और यही अंग्रेज-विरोधी संगठन के संदर्भ में पहली मीटिंग थी। इसमें फैसला हुआ था कि चारों की एक आर्गनाईजिंग कमेटी बने। उसका संयोजक लेफ० जयपालसिंह को बनाया जाए। अपनी अपनी यूनिटों में नियुक्त होने के बाद मिलकर स्थिति पर फिर से विचार किया जाए। ऐसे साधन तलाश किए जायें कि अगर हम लोग दूर दूर हो जायें तो परामर्श हो सके और एक कोड भाषा बनाई जाए। इसके बाद सबने इन उद्देश्यों के प्रति समर्पण की प्रतिज्ञा की। इसके बाद तीन साथियों की नियुक्ति दिल्ली, देवलाली, कराची में हो गई और जयपालसिंह की अंबाला।

अंबाला आकर आपने अपना निवास अम्बाला कण्ट स्टेशन के पास मेट्रोपोल होटल को बनाया, परीज लॉज होटल को नहीं, जहां प्राय: आफीसर्स ठहरते थे। यहां ठहरकर गुप्त संदेश भेजने के लिए आपने दो लेडी टिकट चेकर्स को तैयार

किया और बाद में बीमा कराने का प्रलोभन देकर प्रोवेंशल इश्यारेंस कम्पनी के मैनजर नानी जी को और उसके माध्यम से किलारा बार के मैनजर को। उसके बाद रेलने स्टेशन पर स्थित किलम बार आपकी गुप्त गतिविधि का अड्डा बन गया था। यहा से ही आपने दो महीने के भीतर तीन सौ कमाडिग आफीसर को अपने सगठन का अग बना लिया जो दस हजार सैनिको पर प्रभाव रखते थे। इस प्रकार अंग्रेजो की भारतीय सेना मे क्रातिकारी सगठन प्रवेश करता जा रहा था जिसका इरादा राजा महेन्द्र प्रताप सुभाष चन्द्र बोस और भगतसिंह के समान, भारत के खिलाफ अंग्रेजो की हर चाल को हथियार एव ताकत के बल पर विफल करना था।

## ट्रेन मे एक अमेरिकन अफसर से भेंट और दोनो की प्रतिक्रिया

मेजर जयपालसिंह जून 1942 मे आर्गेनाइजिंग कमेटी की बैठक मे भाग लेने के लिए दिल्ली आ रहे थे। प्रथम श्रेणी के डिब्बे म बैठे अमेरिकन सनिक बीयर पी रहे थे उन्होने इनका बडा स्वागत किया और एक ने कहा—"लेफ्टीनेण्ट क्या तुम इन मुट्ठी भर अंग्रेजो को बाहर नही फेंक सकते?" इनके खामोश रहने पर एक अफसर ने अपना रिवाल्वर इनको भेंट करते हुए कहा— 'किसी दिन इसको अंग्रेजो के खिलाफ इस्तेमाल करना।" आपने उस भेंट को स्वीकार कर लिया। बाद मे जब आपने वियतनाम पर अमेरिकन बम वर्षा को देखा, तो उनके लोकतन्त्र के प्रति भी इनके मन मे नफरत ने स्थान ले लिया।

## अंबाला से क्रातिकारी सदेश

दिल्ली मे इनकी गुप्त मीटिंग विक्टोरिया रोड पर स्थित घुडदौड के घोडो के मालिक एक मुस्लिम सज्जन के घर पर हुई थी, जिसमे ग्यारह महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गए थे। इनमे एक था, अंग्रेजो के खिलाफ आदोलनात्मक साहित्य को बडे पैमाने पर प्रकाशित करके, गुप्त रूप से सैनिको के पास पहुचा जाए और यदि किसी सैनिक पर वह साहित्य पकडा जाए, तो वह उसको अपने अफसर को इस तरीके से दे दे कि उनको ऐसा लगे कि यह काम किसी बाहरी क्रातिकारी सगठन का है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आपने अंबाला मे प्रेस की खोज शुरू कर दी। सौभाग्य से उनको एक सडियल सा प्रेस भी मिल गया, जो इसी साहित्य को छापकर माला माल भी हो गया था। खाने की चीजो के पकिटो में इन इश्तहारो को लपेटकर लेडी टिकट-कलेक्टरो के द्वारा अपने सम्पर्क के व्यक्तियो के पास भेजने का काम आपने बडी चतुराई के साथ किया। जिन

यूनिटो म इनके सम्पक नहीं थ, उनके अफसरो को डाक से भेजे जात थ। ये चिटिठया अबाला स न डालकर दिल्ली स डाली जाती थी, ताकि खुफिया विभाग की नजर स अबाला बचा रहे। इसके अलावा, अबाला म इडियन एयर फोस के प्रशिक्षण लेन वाल भारतीय पायलट, रात के समय, अभ्यास के लिए की जाने वाली उडाना म इश्तहारा के बडलो को छावनी क नजदीक गिरा दिया करते थे। इस प्रकार जयपालसिंह एक भयानक खल बहादुरी तथा होशियारी के साथ खेलत रह।

## फिर एक अग्रेज अफसर से टक्कर और साफ बच निकलना

अबाला रहत हुए एक घटना और घटी। अमृतसर की एक शराब फैक्ट्री के मालिक के बेटे लफ्टीनेण्ट स्वण सिंह को कुछ एग्लो इडियना न रेलवे स्टेशन के पास बन रेलवे इस्टीट्यूट म डास के लिए जाने स रोक दिया था। उनका कहना था कि वहा सिफ योरोपियन्स ही जा सकते हैं। जिस समय, रोत हुए लेफ्टीनेण्ट स्वर्णसिंह अपनी दास्तान जयपालसिंह को सुना रहा था, उसी समय लफ्टीनण्ट खरे आ गया। दोना न सलाह की कि चलकर एग्लो इडियना पर हमला किया जाए, इस समय अनावश्यक झगडे से बचने के लिए जयपाल सिंह न अपन कमरे पर खर का पार्टी देन का प्रस्ताव रखा, जो दोना द्वारा स्वीकार कर लिया गया। वे तीना जा ही रहे थे कि रास्ते म उनका एक अग्रेज मित्र अफसर भी साथ हो लिया था। कुछ देर तक तो शाति के साथ सभी बठे रह, लेकिन स्वण सिंह द्वारा भारतीय आजादी की बात कहने पर अग्रेज उबल पडा। वह बोला—आजादी मेरे कददू पर तुमको आजादी कभी नहीं मिलेगी, किसी सूरत में नहीं, लडाई खत्म हो जाए तब भी नहीं। उसका इतना ही कहना था कि स्वर्णसिंह न गुत्थम गुत्था शुरू कर दी। दोना म जमकर लडाई हुई। खरे स्वर्णसिंह को शाबाशी देता रहा। मामला तूल न पकडे, झगडे की रिपोट न हो, इसलिए जयपाल सिंह न मामला शात कर दिया। पर रात भर, अग्रज अफसर क शब्द उनके काना पर गूजते रहे और रह रहकर उनको अग्रजा की कपट चाला पर क्रोध आता रहा। उनका विश्वास होता गया कि अगर कोई सैनिक विद्रोह नहीं हुआ तो अग्रेज केवल राजनीतिक विद्रोह स डरकर भारत का आजाद नहीं करेंगे।

## एक खूबसूरत बला के चगुल मे फसकर निकल गए

कलकत्ता के एक सभ्य परिवार की निहायत खूबसूरत, बुद्धिमान, अग्रेजा के

विरुद्ध आग उबलवाने वाली एक लडकी, अपने परिवार के साथ वहा के ग्रेट ईस्टन होटल के हॉर्यानिंग हाल म आई थी। वहा वह सेना के अग्रेज विरोधी क्रांतिकारी सगठन के एक सदस्य के सम्पर्क म आई। उस सदस्य न उसका डिार तथा डास पर निमन्त्रित किया और उसको अग्रज विरोधी मानकर, अपन सगठन म ले लिया। एक दिन, उसी लेफ्टीनेण्ट सदस्य का गुप्त पत्र लेकर वह लेफ्टीनण्ट जयपालसिंह को खोजती अम्बाला आई। जयपालसिंह जून की एक शाम को स्टेशन वाले अपने अड्डे पर बैठे थे कि बार के मैनेजर ने आकर उनको कान म कहा कि मि०वर्मा, एक लेडी आपसे मिलने आई हैं। यह सुनकर वह उठे, मुक्कर उसका स्वागत किया और बैठन का निमन्त्रण दिया। उसन पूछा—'आप मिस्टर आर हैं?' 'आर' जयपाल सिंह का गुप्त नाम था। वह अपन साथ एक पत्र लाई थी। जिसम बार बार लिखा था कि हमे अंग्रेजो को निकालकर बाहर फेंक देना चाहिए। मैंन इनको अपन सगठन म भर्ती कर लिया है। पत्र पढकर आपने पूछा था कि अभी एक दो दिन आप यहा ठहरेंगी? उसन जवाब दिया था—यह सब आपकी मर्जी पर है। क्या आप सदेश भेजन वाले को कोई सदेश देंगे? इस पर लेफ्टीनण्ट जयपाल सिंह ने उसके ठहरने की व्यवस्था करने की बात पूछी। उसका उत्तर था, उसके एक मित्र यहा रहने हैं, वह उनके पास रहेगी। यह सुनकर उनके मन म शक पदा हुआ और उसके दोस्त का पता लगान की बात मन में उत्पन्न हुई।

उस शाम को, वह एक पादरी के यहा ठहरी। वह नौजवान पादरी अंग्रेजो का जासूस था, यह वह सुन चुके थे। उस पादरी की असलियत बताने वाले छावनी के पी० सी० एस० जाट मजिस्ट्रेट भीमसिंह थे। इनके पिता कैप्टन दलपत सिंह धारासभा के मनोनीत सदस्य थे और इनके पिताजी के दोस्त भी। भीमसिंह की ईमानदारी पर इनको विश्वास था। अत आपने रात को घड़ी के कमरे म, एक गुप्त बैठक बुलाई, इस बात पर विचार किया। एक सिख अफसर ने उनको, पादरी के मकान पर जाने और खुद उस लडकी से यह कहने कि तुमने उसको जो पत्र दिया है उसको वह पुलिस को दे रहे हैं, सलाह दी। आपने प्रात तीन बजे, पादरी के मकान पर जाकर उस लडकी से कहा कि आपने खत गलती से मुझे दे दिया है, एक ऐसे अफसर को डगमगाने की कोशिश की है जिसके बाप दादे हमेशा से महामहिम सम्राट् के प्रति वफादार रहे हैं। मुझ आपको पुलिस के हवाले करना पडेगा। उसके बाद, वह पैरीज होटल गये। सारे मामले की रिपोर्ट की। वह खत कमांडिंग अफसर को दे दिया। उस स्त्री के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं हुई। जयपालसिंह उसके जाल से निकल तो गये, पर उसी दिन से उन पर निगाह रखी जाने लगी।

## लीबिया के रेगिस्तान में भारतीय ड्राइवरों ने दी थी अंग्रेजों को चुनौती

कला की खूबसूरत वह जासूस लड़की जयपाल सिंह के पास जो पत्र लेकर आयी थी, उसमें एक बड़ी महत्त्व की सूचना मौजूद थी। सूचना यह थी कि 1942 के प्रारम्भ में, लीबिया के रेगिस्तान में सैनिक मोटर चलाने वाले ड्राइवरों ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया था। हड़ताल का कारण यह था कि भारतीय ड्राइवरों को बड़ी मेहनत के साथ रेगिस्तान पार करके जाना पड़ता था। सैकड़ों मीलों की यात्रा, व ठसाठस भरी गाड़ियां लेकर पार करते थे। गर्मी तथा धूप में ड्राइविंग करने के बाद गाड़ियों में भरा सामान उतारकर रखना पड़ता था, जबकि अंग्रेज ड्राइवर, सिर्फ गाड़ी चलाकर आराम करते थे। इस भेदभाव से भारतीय ड्राइवर बगावत पर उतारू हो गये थे। उन्होंने काम पर जाने से मना कर दिया। इस हड़ताल के दौरान, हजारों को गिरफ्तार किया गया, सैकड़ों पर मुकदमे चलाये गये और सजा के तौर पर उनको गोली मार दी गई। अंग्रेज मिलिटरी पुलिस ने, इन बहादुर भारतीयों को गोलियों से उड़ा दिया। इस समय, भारतीय तथा अंग्रेज सैनिकों के बीच गोलियां भी चलीं। सन् 1857 के बाद, यह बहुत बड़ी घटना थी। इस घटना से, अंग्रेजों के कान खड़े हुए और उनको भारतीय सैनिक विद्रोह की सुगंध आने लग गयी थी। जयपाल सिंह के विद्रोही संगठन ने इस घटना का जमकर प्रचार किया था।

इस समय जयपाल सिंह 323 सप्लाई यूनिट के आफीसर कमांडिंग थे। उनको, उक्त घटना के एक सप्ताह बाद आर्डर मिला कि अपनी कमान का चार्ज अंग्रेज आफीसर को देकर अम्बाला से रात को 11 बजे चलने वाली गाड़ी से जबलपुर चले जाएं। वहां जाकर आप 600 भारतीय सिपाहियों की कमान संभालेंगे और फिर कराची को रवाना होंगे। वहां जाकर आपको मालूम होगा कि आपको कहां जाना है? इस आर्डर का मतलब वह समझते थे कि उनको मध्य एशिया के युद्ध में झोंका जा रहा है।

यह आदेश, जनरल हैड क्वार्टर्स का नहीं था और उनको वहीं के आदेश पर सप्लाई कमाण्ड से हटाया जा सकता था। अतः आपने इसका विरोध किया। आपने अपने कर्नल से कहा था— आप मुझे नहीं हटा सकते। मुझे सिर्फ जनरल हैड क्वार्टर्स के आदेश पर हटाया जा सकता है।' जयपाल सिंह का यह कदम उनकी बहादुरी तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की क्षमता का प्रतीक है।

इस घटना के बाद, आपने संगठन का काम एक दूसरे अफसर को सौंप दिया और अपने क्रांतिकारी साथियों के परामर्श पर स्वयं अंग्रेज भक्तों की तरह आचरण करना प्रारम्भ किया, ताकि खुफिया की नजरों से बचे रहें। कर्नल से हुई कहा सुनी

के दो दिन बाद, इनको लाहौर के सप्लाई डिपो म भेज दिया गया। वहा पहुचने पर मेजर केनिग ने इनको बताया था कि तुम्हारी रिपोर्ट खराब है। मैं 60 दिन तक तुम्हारी निगरानी रखूगा और तुम्हारी रिपोर्ट जनरल हैड क्वाटस को भेजूगा। फूक फूक कर कदम रखना। और सचमुच आपने बडी सावधानी के साथ रहना शुरू किया। लाहौर मे, अपनी बडी सक्रिय इकाई तक को, आपने आन की सूचना नही दी। मेजर केनिग ने, इन पर नजर रखने के लिए स्काटलैण्ड निवासी कैप्टन ब्राउन को नियुक्त किया था। यहा इनकी सहायता डब्ल्यू॰ ए॰ सी॰ (वाई) की शेख-बहनो ने की। य दिल्ली म इनका घुडदौड के मालिक के घर पर हुई बैठक मे मिली थी। दोनो वायर लैस आपरेटर थी और बहुत सुन्दर भी। दोनो ही क्रान्तिकारी सगठन की सदस्या थी। दोनो ने कैप्टेन ब्राउन पर ऐसा जादू किया कि न तो सगठन का रहस्य खुला और न ब्राउन ने जयपाल सिंह के खिलाफ रिपोर्ट दी। दोनो बहनो म से एक थी—मूमी और दूसरी थी नैसी। इन्ही दोनो से सूचना पाकर जयपाल सिंह ने यहा के चिनप्पा लच होम का पता मालूम किया, जहा राजनीतिक विचारधारा के लोग बैठते थे। यही बैठकर आपने साम्यवादी साहित्य पढा। यही आपने अजय घोष की पत्नी लिट्टो घोष को पार्टी साहित्य बेचते देखा था। यहा की बैठक तथा साहित्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप, आप इस नतीजे पर पहुचे कि सन् 1942 के आन्दोलन म सैनिक विद्रोह का हस्तक्षेप नही होना चाहिए।

शेख बहनो की सहायता से के॰ ब्राउन ने इनके बारे म अच्छी रिपोर्ट दी और आपने अम्बाला आकर अपनी कमाण्ड वापस प्राप्त कर ली। यदि शेख बहनो ने अपने सौन्दय तथा आकषक रूप रग से कैप्टन ब्राउन को मुग्ध न बना लिया होता, तो वह निश्चय ही जयपाल सिंह के विरोध मे रिपोर्ट देता। उस रिपोर्ट पर आगे कायवाही होती, जिसका परिणाम होता कोटमाशल और गोली। शेख बहनो का काम, बडे-से बडे महत्त्वपूर्ण देश भक्त नेता स कम राष्ट्रीय नही था।

## 25 अगस्त 1942 को सैनिक क्रान्तिकारी सगठन की दिल्ली मे बैठक

25 अगस्त 1942 को आर्गेनाइजिंग कौंसिल की बैठक दिल्ली जक्शन के पास फ्रटियर हिन्दू होटल म हुई। कौंसिल के सात सदस्य उपस्थित थे। इसमे आठ निणय लिये गये। इनम महत्त्वपूण यह था कि निरी तोड फोड से अग्रेजो को नही हराया जा सकता। इसके लिए जरूरी है कि शक्ति के केन्द्र तथा लक्ष्यो पर अधिकार किया जाए और फिर उनको अग्रेजो के हाथो म न जाने दिया जाए। यह काम जनता की प्रशिक्षित टुकडियो के अभाव म पूरा नही हो सकता। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण म यह भी कहा कि जब तक सेना और जनता एक जुट

होकर, किसी क्रांतिकारी संगठन के नीचे बगावत नहीं करती, तब तक परिणाम की दृष्टि से घटिया होते हुए भी अंग्रेज गुण में श्रेष्ठ बने रहेंगे। उनको हमेशा इस बात का दुःख बना रहा कि सेना का 24 घंटे का नौकर सिपाही जनता का ऐसा क्रांतिकारी संगठन खड़ा नहीं कर सकता। इसी विचार से प्रेरित होने के कारण, आपके संगठन ने सन 1942 के आन्दोलन में जनता की हथियार तथा पैसा से सहायता की। लगभग तीन हजार हथियार सेना में 42 के क्रांतिकारियों को मिले। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय सेना आजादी की लड़ाई में, गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन से कम महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर रही थी। इसका एक प्रमाण है कि मेरठ में पैदल सेना की एक यूनिट ने मोर्चे पर जाने से इनकार कर दिया, बम्बई में एक यूनिट ने अंग्रेजों पर गोली चलाई थी और चन्द्रसिंह गढ़वाली की यूनिट ने सत्याग्रहियों पर गोली चलाने से साफ इनकार कर दिया और बम्बई का नाविक विद्रोह तो मशहूर है ही।

## कलकत्ता की एक शाम और अंग्रेजों के प्रति क्रोध में उबाल

सन 42 की अहिंसात्मक क्रांति की लहरें धूमिल होती जा रही थीं और द्वितीय युद्ध में निखार आता जा रहा था। जयपाल सिंह जी की यूनिट को आसाम और बर्मा की दिशा में भेजा गया था। उनकी स्पेशल कलकत्ता होकर गुजरी थी। वहां वे दो दिन ठहरे थे। ग्रेट ईस्टन होटल में आप अपने सहयोगियों से मिले। उनसे आपने, अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के साथ किये गये बर्बर व्यवहार की कहानियां सुनी थीं। उनको सुनकर भावावेश में आप भी बिलख बिलखकर रोये थे और सुनाने वाला सिख अफसर भी रोया था। उनके अत्याचारों की कहानियों को इनके संगठन ने इश्तहारों के द्वारा सारे देश में पहुंचा दिया।

ऐसी ही एक घटना नोआखाली तथा कलकत्ता के साम्प्रदायिक झगड़ों के समय घटी थी। 15 अगस्त 1946 में अंतरिम सरकार की स्थापना दिल्ली में हो चुकी थी और 16 अगस्त को कलकत्ते में दंगे शुरू हो गये थे। आदमी पागल बना आदमी को मार रहा था। बलात्कार लूट पाट और आगजनी से कलकत्ता उजड़ रहा था और दंगों को रोकने के लिए तैनात गोरे सैनिक तमाशा देख रहे थे। वे खुश होकर एक दूसरे से कहते थे—"मरने दो हरामजादों को। यही तो है स्वराज्य।" अंग्रेजों के इस व्यवहार के विरुद्ध उस रात हवाई यूनिट के मेस में खाना न बनाने का जयपाल सिंह ने आदेश दिया। कर्नल इमिल्टन डिनर के अभाव में बिगड़ा था, लेकिन आपने कह दिया कि 'हम राष्ट्रीय शोक के दिन खाना नहीं खाते।' दूसरे दिन, इनको मालूम हुआ कि इनके मित्र के० एल० घोष को नोआखाली में मुस्लिमों ने कत्ल कर दिया है और उसके परिवार को

ले गए हैं। आपने कर्नल इंगिलिस से उसको बचाने के लिए कहा था। इस पर उसका उत्तर था— अरे घोष उसके साथ ऐसा हुआ ! पर वह इसी के काबिल था।" इस पर आपने राय के साथ कर्नल से कहा कि यदि आपने उसके बचाव के लिए कुछ नहीं किया तो मैं अपने पांच सौ सैनिक लेकर वहां जा रहा हूं।" अंग्रेजों के इस घृणास्पद व्यवहार से उनका गुस्सा और और बढ़ता गया। अंग्रेज भारत को बर्बाद करने पर तुले थे और मेजर जयपाल सिंह उनकी हर योजना का विध्वंस करने पर।

## कर्नल कॉथोर्न और जयपाल सिंह

जयपाल सिंह को अंग्रेजों से बेहद घृणा थी किन्तु उस समय का कैप्टन और बाद का कर्नल हॉथोर्न उनका गहरा मित्र था। इसलिए कि वह उदार अंग्रेज था। अंबाला से जयपाल सिंह को, अपने सेक्शन के साथ तेजपुर में नियुक्त किया गया था। उनका काम था काचिन और चीन की पहाड़ियों में दुश्मन की फौजों के पीछे काम कर रही ब्रिटिश खुफिया यूनिटों को रसद पहुंचाना। यहीं आपकी भेंट कॉथोर्न से हुई थी। यहां हॉथोर्न के सहयोग और परामर्श से, आपने विमानों द्वारा मार्चे पर लड़ रही सेना को न केवल रसद बल्कि जीप, मोटर तथा भारी तोपों तक पहुंचाने की तकनीक विकसित की थी। इस काम में जयपाल सिंह इतने उलझे कि संगठन का काम शिथिल पड़ गया। 1943 में संगठन की ओर से यह तय किया गया कि संगठन का काम यूनिट के स्तर पर यूनिट करे।

1943 में इनको चकलाला नियुक्त कर दिया गया था और मेजर रिंध की कमान में नयी एयर सप्लाई यूनिट संगठित करने का काम सौंपा गया था। मेजर रिंधे भी उदार थे और भारतीयों की स्वाधीनता के समर्थक थे, इसलिए इनका उनके साथ काम करने में कोई परेशानी नहीं हुई। यहीं रहकर, आपको सेना में, अंग्रेज विरोधी एक दूसरे संगठन का पता लगा था। यह संगठन गैर-कमीशंड आफीसर्स का था। इस संगठन का नाम था—"इंडियन सोलजर्स लीग।" आपने इस लीग को, अपने संगठन के साथ जोड़ने का बड़ा प्रयास किया, किन्तु लीग के कार्यकर्ताओं को यह बात रास नहीं आई, केवल समझौता इस बात पर हुआ कि चूंकि उद्देश्य दोनों का एक है, अतः कोई कार्यवाही करने से पहले एक दूसरे को परिचित करा देना आवश्यक है।

## फिर बर्मा की दिशा में प्रस्थान

अगस्त सन् 1943 में आपको अपनी एयर सप्लाई यूनिट के साथ बर्मा भेज दिया

गया। इस समय इनका रैंक कैप्टेन था। सिर्फ छह महीने के भीतर आपकी यूनिट को त्रिपुरा से चटगांव, चटगांव से जोरहाट और जोरहाट से मणिपुर के इलाके में जाना पड़ा था। यहां लड़ाई में फंसी डिवीजनों तथा दुश्मन से घिरे इम्फाल में अपने सिपाहियों को रसद गिरानी पड़ती थी। निरंतर थका देने वाले इस काम से उनकी सेहत खराब हो गई। संग्रहणी का रोग लग गया, मलेरिया हो गया और शरीर की ताकत छीजने लगी। फिर भी आपने अपने अफसरों से अपनी बीमारी का जिक्र नहीं किया।

उन दिनों कोहिमा को जापानी ले चुके थे। मणिपुर के इलाके पर हमला प्रारम्भ कर दिया था और नागा हिल्स में जबरदस्त लड़ाई हो रही थी। आई० एन० ए० भी जापानियों के साथ लड़ रही थी। अंग्रेज आई० एन० ए० को जिफ्स के नाम से पुकारते थे और भारतीय अफसरों को इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया जाता था। लेकिन जिफ्स के बारे में जानने की जिज्ञासा कप्तान जयपाल सिंह को परेशान करने लगी। आप एक दिन, बरसात में ही ओएरगांव एयरफील्ड से दीमापुर के लिए गाड़ी लेकर चल दिए थे। यहां आई० ए० एस० पा० के कैप्टन खन्ना ने आपको बताया कि आई० एन० ए० का जो सैनिक अंग्रेजों के हाथ लगता है, उसको गोली मार दी जाती है, और ऐसा सैकड़ों के साथ हुआ है। इस घटना ने, कै० जयपाल सिंह को अधिक क्षुब्ध किया। वह चाहते थे कि उनके साथ, अंग्रेज युद्धबंदियों की तरह आचरण करते। वे सब वर्दी में लड़ रहे थे और ऐसा करना, आपके अनुसार उनका हक था। लेकिन अंग्रेज कौम ने कभी किसी के हक तथा अधिकार की रक्षा कब की थी? लोकतंत्र के सिद्धांत, इंसानियत का आदर्श, मानवीय संस्कृति की रक्षा की उनकी पुकार केवल एक ढोंग था, एक नाटक था, जीवन की वास्तविकता नहीं। आयरलैण्ड की आजादी की मांग करने वाली गोरी जनता से लेकर भारत के कालेआदमी तक को उन्होंने गोलियों से भूना तथा तोप के मुंह से बांधकर उड़ाया था। अंग्रेज कौम की इस बेईमानी के प्रति, मेजर जयपाल सिंह के मन में गहरा रोष पैदा होता जा रहा था।

एक दिन, अराकान पहाड़ियों पर रसद गिराने की मुहिम पर जाते समय पटंगा (चटगांव) जाना पड़ा। वहां आपने देखा कि एक सी 47 जहाज भारतीय नागरिकों को लेकर उतरा था। ये सब आजाद हिन्द फौज के सिपाही थे, जिनकी वर्दियां उतरवा कर नागरिकों के कपड़े पहनवा दिए गए थे। वहां उनको बंदी शिविर में रखा गया। अमरिकी सिपाही उन पर पहरा दे रहा था। उससे बातें करके आप बंदियों के पास पहुंचे। उनसे बातें करने पर मालूम हुआ कि वे आजाद हिन्द फौज के सैनिक थे, जिनको इम्फाल से बंदी बनाकर लाया गया था। इनमें हरियाणा के लोग थे। उनकी हालत देखकर आपको बड़ा दुख हुआ। ऐसी हर घटना से अंग्रेजों की असलियत उनके सामने खुलती जा रही थी और उनका

उखाड फेंकने का उनका इरादा पक्का होता जाता था।

## मौत के मुह से लौट आए थे कै० जयपाल सिंह

एक दिन आप दरगाव एयरफील्ड पर खडे इम्फाल जाने वाली रसद पैक कर रहे थे कि थकान के कारण सहसा गिर पडे। वहा से उठाकर आपको गोताघाट एयरफील्ड के अस्पताल मे भर्ती कर दिया गया। अगले दिन विमान से कलकत्ता लाया गया। वहा से एबुलेन्स ट्रेन से बरेली अस्पताल के लिए भेजा गया। बरेली मे उनकी हालत और अधिक बिगडने लगी। एक और भयकर रोग और दूसरी ओर अंग्रेज डाक्टरो तथा नर्सो का भेदभाव भरा बरताव दोनो ही उनको परेशान कर रहे थे, लेकिन युद्ध के बाद भारत का स्वरूप क्या बनता है, यह देखने के लिए जिंदा रहने की कामना ही उनका बनाए रख सकी। युद्ध म जापानियो की हार और आजाद हिन्द फौज द्वारा समर्पण उनको व्यथित कर रहे थे, पर आजादी लाने की भावना उनको जिंदा रखने के लिए सघर्ष कर रही थी।

बरेली के मेडिकल बोर्ड ने इनको पूना के अस्पताल म भेजने का फैसला लिया था। लाइलाज मरीजो को पूना भेजना नियम बन गया था और उनको फौज से खारिज करने का भी यह एक तरीका था। स्ट्रेचर पर रखकर आपको गाडी की एबुलेन्स म रख दिया गया, जहा एक बुड्ढी अंग्रेज नर्स उनकी देखभाल को तैयार की गई थी। इनको देखते ही उसकी चीख निकल पडी थी— 'स्पू कैस' और इसके बाद उसने अपने सीने पर, उगलियो से क्रास बनाया। इसके बाद वह बोली—इशू मसीह तुम पर रहम करे और तुमको अपनी गोद म ले ले। वह उनकी मौत की प्रार्थना कर रही थी और वह स्वय किसी कीमत पर मरना नहीं चाहते थे। जनरल तिमया के छोटे भाई ने, जो इनके बगल के पलग पर थे, इनको हिम्मत बधाई। आगरा तथा घर की खबरें सुनाई। पिताजी के अवकाश लेने की सूचना दी। इन बातो से इनको कुछ शाति मिली थी, तो मरीजो तथा घायलो की हालत को देखकर बेचैनी पैदा हुई थी। बीमारी की हालत म बरेली से पूना तक की यात्रा बडी दुखदाई साबित हुई। सर्दी और डिब्बे म स्ट्रेचर की बदबू ने बहुत परेशान किया था।

इस भयकर बीमारी से इनको एक जर्मन यहूदी डाक्टर ने बचा लिया। उसने इनको केवल सूखी मछली की खुराक पर रखा। एक महीने मे ही आप ठीक हो गए और यहा से सीधे चकलाला डिपो पर वापस पहुच गए।

—

## नम्बर 8 एयर डिस्पैच लाइन की कमान और परीक्षा की घड़ी

एक ओर तो देश में राजनीतिक गतिविधियां बहुत तेज हो गई थी, दूसरी ओर सेना के विविध अंगों में ब्रिटिश विरोधी भाव बड़ी तेजी के साथ उभर रहे थे। साथ ही, भारत के अंग्रेज अफसर इस तथ्य से अवगत थे। वे जानते थे कि उनके प्रति भारतीयों की घृणा का तूफान फूट सकता है और यह तूफान 1857 के तूफान से अधिक खतरनाक तो होगा ही, सफल भी हो सकता है। उनका दिमाग इस तूफान को रोककर अथवा उसकी दिशा मोड़कर, कुछ दिन तक और भारत को गुलाम बनाए रखना था। इसी उद्देश्य से उन्होंने नम्बर 8 एयर डिस्पैच यूनिट का गठन किया था और उसकी कमान कै० जयपाल सिंह को सौंपने का निर्णय लिया था।

चकलाला पहुंचने के बाद, कर्नल हायान ने उनको बताया कि तुमको नम्बर 8 एयर डिस्पैच यूनिट की कमान सौंपने का निश्चय किया है। उन्होंने यह भी कहा कि एक लम्बी बीमारी के बाद, तुमको आराम की जरूरत है, लेकिन मेरा विश्वास है कि तुम इस कसौटी पर खरे उतरोगे।

आपने इस नवीन पद भार को स्वीकार कर लिया। इस समय आपका रैंक मेजर का था। आप फील्ड-अफसर थे। पांच अंग्रेज कै० और दो लेफ्टीनेण्ट इनकी कमान में थे। इस समय, मेजर जयपाल सिंह इस प्रकार का भार सम्भालने वाले पहले भारतीय थे। इस कमान में 600 सिपाही थे। जिनमें जाट, सिख तथा पठान थे। 12 कमीशन प्राप्त अफसर भी थे। यह जनवरी 1944 का समय था। इस यूनिट को हरकत में लाने का समय दो माह दिया गया था। पर थोड़े दिन बाद ही आदेश दिया गया कि 15 दिन में ही सारी तैयारी पूरी कर लनी है।

आपने अपनी यूनिट का संचालन अफसरी तरह से नहीं, भाई चारे की तरह किया। सबको व्यक्तिगत तौर पर बुलाया। उनके सामने अपनी बात रखी। अंग्रेजों से आपने कहा, आप मुझे सर कहकर नहीं पुकारेंगे मुझे केवल 'जय' कहेंगे। आपने यह भी कहा कि मैं अंग्रेजों का व्यक्तिगत तौर पर विरोधी नहीं हूं उनसे मेरा सैद्धांतिक मतभेद है। इस यूनिट का काम भाई चारे के साथ, पूरे अनुशासन से चलना है।, इसमें शिथिलता बर्दास्त नहीं की जायेगी। एरिया कमांडर विदेश जाने से पहले जब इनकी यूनिट को देखने आया था तब कर्नल हायोन ने उसमे मेजर जयपाल सिंह के विषय में कहा, 'यह आदमी काम करने में शैतान की तरह तेज और मजबूत है।'

मार्च 1944 में आप विमान द्वारा अक्यब गए, जहां आपको युद्ध से बर्बाद बर्मा को देखने का मौका मिला था। उसकी बरबादी को देखकर इनकी युद्ध-विरोधी भावना और अधिक बढ़ गई। यहां आपने बर्मा की मेडिकल सर्विस के

सिविल सजन कनल शाह निर के माध्यम से बर्मीज पैट्रियोटिक आर्मी के सनिका म मुलाकत की। इन बहादुरा न अपन मुल्क स जापानिया का खदेडन क लिए ब्रिटिश सैनिका का साथ उसी प्रकार दिया था जैस माओ की चीनी सना न, फासीसियो को चीन म खदेडन के लिए चावाई शेक की सेनाओ का साथ दिया था। ये लोग अग्रेजा क खिलाफ हथियार उठाने का मौका खोज रहे थ। एयर डिस्पेच नम्बर 5 के कैप्टन शेषाद्रि बर्मी-पट्रियोटिक आर्मी के तीन अफसरो को उनके पास लाए। जब कैप्टन हार्वेसन को मालूम हुआ तो उसने मेस म उनके खाना खाने पर एतराज किया। लेकिन मेजर जयपाल सिंह ने हार्वेगन को डाट दिया और कहा यहा सीनियर अफसर मैं हू हुक्म मेरा चलेगा। इस पर सारे अग्रेज अफसर विरोध मे उठकर चले गए। बर्मी पैट्रियोटिक आर्मी के बारे मे, अंग्रेजो की राय थी कि वे गद्दार हैं, दुश्मन से उनकी साठ गाठ है। जिस तरह अग्रेज भारतीय को स्वाधीनता के नाम पर बिदकते थ, उसी तरह बर्मा के क्रातिकारियो को भी गालिया देते थे।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के बारे मे, बर्मी पैट्रियोटिक आर्मी के इन अफसरो की राय थी—'आजाद हिन्द फौज एक नयी ताकत है जिसे इस युद्ध ने भारत के लिए पैदा किया है। युद्ध ब्रिटिश इण्डियन आर्मी म एक नयी चेतना फूट रहा है। तुम्हारे देशवासी विद्रोह के लिए तैयार बैठे हैं। काश गांधी जी थोडी देर के लिए ही सही विद्रोह के रास्ते मे न आयें।'

योरोप मे, युद्ध की समाप्ति के बाद, भारतीयो की सेना भारत वापस आ गई थी और अपने साथ अग्रेजो के खिलाफ भारी गुस्सा तथा नफरत लायी थी। कैंटीनो क्लबो और मेसो मे सवत्र भारतीयो का यह गुस्सा देखा जाता था। ब्रिटिश विरोधी इस गुस्से को अधिक तेज करने के लिए मेजर जयपाल सिंह का क्रातिकारी सगठन, आजाद हिन्द फौज के सैनिको के साथ अग्रेजो द्वारा किए गए बबर अत्याचारो की कहानी, इश्तहारो के माध्यम से, भारतीय सेनाओ मे पहुचा रहा था।

इसी बीच 6 अगस्त 1945 को हीरोशिमा पर अणु बम गिरा और दो दिन बाद नागासाकी पर। भीषण बर्बादी से बचने के लिए जापान ने 10 अगस्त को आत्म समपण की घोषणा कर दी और 14 अगस्त को युद्ध विराम की घोषणा हो गयी। यह घोषणा मेजर जयपाल सिंह ने दिल्ली रेलवे स्टेशन पर सुनी। उस समय वह कश्मीर से अपनी युद्ध-अवकाश की छुट्टिया मनाकर लौट रहे थे। कश्मीर-यात्रा का उद्देश्य आर्गेनाइजिंग कमेटी की बैठक में भाग लेना था। इस बैठक मे, देश की भावी राजनीतिक गतिविधि पर विचार किया गया था। बैठक की आम राय यह थी कि ब्रिटिश सरकार हिन्दू मुस्लिम दगा को प्रोत्साहित ... भारत से अपने जान की शत के रूप मे हिन्दू मुस्लिम एकता का दाव

लगायगी । आजादी के सवाल का पीछे धकेलगी, शिमला कान्फ्रेंस एक धोखा है और भारतीय नेता उस धोखे का शिकार बन गए है । अत आवश्यक है कि भारत की ब्रिटिश विरोधी ताकतो मे तारतम्य स्थापित किया जाए और देश की समाजवादी, साम्यवादी पार्टियो के साथ मिलकर युद्ध के तुरत बाद विद्रोह कर दिया जाए ।

## मेजर जयपाल सिंह का बर्मा थाईलैंड और इडोचाइना जाकर आजाद हिन्द फौज के लोगो से सपर्क करने की योजना—

मेजर जयपाल सिंह का दिमाग इस समय इस बात पर लगा हुआ था कि अग्रेज एक बार भारतीयो को अपनी चाल म जरूर फासेंगे । इसलिए उस परिस्थिति मे, अग्रेजो से आजादी छीनने के लिए जनता, राजनीतिक दलो और सेना के विद्रोही सगठनो का एक होना बहुत जरूरी है । अपने इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए, आजाद हिन्द फौज के बचे खुचे सैनिकों की खोज मे आपने बर्मा, थाईलैण्ड तथा इडोचीन जाना आवश्यक समझा । आप विमान द्वारा कलकत्ता से अक्यब पहुचे रगून गये, लडाई खत्म होने के पाच दिन बाद आप बकाक मे थ, सात दिन बाद सैगोन मे । बैकाक म भारतीय बस्ती में घूमे । वहा मालूम हुआ कि आजाद हिन्द फौज क लोग भारत चले गए हैं, वहा बगावत की तैयारी करने के लिए ।

## भारत के राजनीतिक दलो से निराशा ही हाथ लगी

नवम्बर 1945 मे आपकी यूनिट चकलाला आ गई थी और आकर आप भारत की राजनीतिक पार्टिया की वार्ताओं के नतीजे पर ध्यान लगाये हुए थे। 1949 के प्रारम्भ मे, काग्रेस ने प्रातो म सरकारें बनाई । अग्रेज भारतीय सेना को खत्म करने पर तुले थे और इनका क्रातिकारी सगठन नेताओ से बात कर रहा था । आपने सोशलिस्टो से सपक किया आप स्वय 'ब्लिट्ज' के सपादक आर० के० करजिया से मिले थे । उनको अपनी भेंट का मकसद बताया था । उनको एक दस्तावेज दिखाई थी और उसके प्रकाशन की व्यवस्था का रास्ता बताने का अनुरोध किया था । करजिया साहब ने उसको प्रकाशित न कराने की सलाह दी और अच्युत पटवधन तथा जयप्रकाश जी से मिलने का परामश दिया था । मेरठ काग्रेस मे जाकर और नेताओ से मिलने को भी कहा था । सोशलिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी सुरेश देसाई के नाम एक पुर्जा लिखकर भी इनको दिया था । श्री सुरेश देसाई पोरबदर के होटल के कमरे म इनसे मिलने आए थे । साइक्लोस्टाइल कराने के लिए श्री देसाई को आपने कुछ दस्तावेज भी दिये थे । ये दस्तावेज यदि

प्रकाशित हो जाते तो भारत की जनता का, उस परिस्थिति तथा उन घटनाओं का ज्ञान हो जाता, जो भारतीय स्वाधीनता की पूर्व वेला में भारत में घटित होने को थीं जो निश्चय ही अंग्रेजों की षडयन्त्रकारी योजना का परिणाम थीं।

सोशलिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी सुरेश देसाई के साथ आप मेरठ भी आए। वहां कांग्रेस के नेताओं से मिले थे। उनमें, आपको कोई उत्साह नजर नहीं आया। मेरठ में भी साम्प्रदायिक झगडे के कारण कर्फ्यू लगा था। आपकी राय है कि कांग्रेसी नेताओं के पास इस मजहबी जनून को रोक देने की कोई योजना नहीं थी। गर्म भाषण अवश्य थे। मेरठ से, आप जयप्रकाश नारायण से मिलने बम्बई आए थे। यहां आकर आपने अपनी सारी योजना को लिख डाला और उसको सुरेश देसाई के हवाले कर दिया ताकि तीनों प्रमुख समाजवादी नेताओं को वह दिखा लें। कुछ दिन बाद वे जयप्रकाश जी के बम्बई आने पर, ठाकुर द्वार रोड पर समाजवादी पार्टी के दफ्तर में उनसे मिलने गए। कुछ तकनीकी कारणों से वह तो बाहर रहे श्री सुरेश ने दस्तावेज उनके सामने रखे। जयप्रकाश जी ने, कुछ दिन बाद, अपना मत देने के लिए कहा। सुरेश देसाई की सलाह पर ही आप डॉ० लोहिया से मिलने गए। उनसे आप प्रभावित हुए। लम्बी चौड़ी बातें हुई, पर ठोस नतीजा कुछ नहीं निकला। जय प्रकाश जी का मत भी उनको मिल गया था। उनका कहना था कि वह जनता की सामूहिक कार्यवाही में ही विश्वास रखते हैं। और मेजर जयपाल सिंह का मत था कि वह भी जनता और सेना की मिली-जुली कार्यवाही में विश्वास रखते थे। और यथार्थ में दोनों के विश्वासों में कोई अन्तर नहीं था। अन्तर केवल इतना था कि मेजर जयपाल सिंह ब्रिटिश साम्राज्य के भारत विरोधी षड्यन्त्र को जनता तथा सैनिक विद्रोह द्वारा विफल करना चाहते थे और जयप्रकाश जी इसको टाल रहे थे।

मेजर जयपाल सिंह का, सोशलिस्ट पार्टी के विषय में मत है कि जयप्रकाश जी द्वारा गवर्नरों को गिरफ्तार करने और गुरिल्ला लड़ाई छेड़ने का आह्वान सिर्फ राजनीतिक लफ्फाजी थी। आपका मत है कि 1945 के अंतिम दिनों में कांग्रेसी रहनुमा इस बात पर सहमत हो गए थे कि अब पाकिस्तान बनने से रोका नहीं जा सकता। राजा जी ने, अपनी बात कह दी थी। इस सबसे, आपने नतीजा यह निकाला कि कांग्रेसी नेता स्वयं यह समझ गए थे कि जब जनता साम्प्रदायिक आग में झुलसेगी तब वह सहायता के लिए पुकारेगी और चिल्ला चिल्लाकर कहेगी कि जिन्ना को पाकिस्तान दे दो। एक सीमा तक हुआ भी यही। समूचा देश साम्प्रदायिकता की आग में झुलस गया। पंजाब, नोआखाली और भारत तथा पाकिस्तान के अनेक शहरों में जो रक्तपात, लूटमार हिंसा तथा बलात्कार की घटनाएं घटीं उतनी सम्भवतः नादिर शाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के समय भी न घटी होंगी। मेरे साथ बातों के दौरान, वह प्राय: इस बात पर

बल दत थे कि अंग्रेजों के समान कांग्रेस भी हिन्दू मुसलमानों को बांटकर राज करने की योजना अपना सकती है। देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिक ताकतों को देखकर उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती दिखाई पड़ती है अतः प्रत्येक देशभक्त का काम है कि वह इस खतरे को रोकने के लिए आगे आये।

7 जनवरी 1946 को मरी में आपने पिकनिक आयोजित करने के बहाने आरगनाइजिंग कमेटी की मीटिंग बुलाई। इसमें पन्द्रह अफसरों, डब्ल्यू० ए० सी० (आई) के तीन सदस्यों, वायु सेना के दस गैर कमीशंड अफसरों, सिगनल कोर तथा पैदल सेना की यूनिटों ने भाग लिया था। इससे दो बातें साबित होती हैं, पहली यह कि अंग्रेजों को भारतीय सेना में बगावत की बात हवाई कल्पना नहीं थी। उसका ठोस आधार था। उसका प्रभाव सेना के अधिकांश अंगों में था और बगावत के दौरान सेना के अधिकांश साधनों तथा शक्ति के स्रोतों पर अधिकार कर लेने की उनकी योजना सुविचारित थी। दूसरी यह कि वह सेना की बगावत द्वारा अंग्रेजों से सत्ता छीनकर सैनिक शासन स्थापित करने की बात नहीं सोचते थे। यही कारण है कि मेजर जयपाल सिंह ने भारत के समस्त राजनीतिक दलों से नेतृत्व की याचना की थी। लेकिन भारत का राजनीतिक नेतृत्व इस देश के लिए न तो इस प्रकार के विद्रोह से सहमत था और न देश के लिए समृद्ध एवं साम्प्रदायिक भेदभाव रहित जम्हूरियत लाने के लिए तैयार था। वह तो धर्म और जाति के नाम भारत को विभाजित करने की मानसिकता से भरे बैठा था।

7 जनवरी 1946 की इस मीटिंग में ही, एक सिख अफसर ने, मेजर जयपाल सिंह द्वारा पी० सी० जोशी से संपर्क करने के प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—'यार, वे हमसे गद्दारी करेंगे।' मेजर जयपाल ने उनके एतराज को स्वीकार करके अपने लोकतंत्रीय मान्यता का परिचय दिया था। मार्च 1946 के महीने में विद्रोह करने की बात पर सहमति हो गई थी। एक कार्यवाही-परिषद् की रचना कर दी गई और मेजर जयपाल को उसका सचिव बना दिया गया था।

फरवरी 1946 में चकलाला वापस लौटने पर आपको मालूम हुआ कि जनरल आकिनलेक 'मैना आपरेशन' का मुआयना करने के लिए उत्तर पश्चिम सीमा का हवाई दौरा करेंगे। इसको सुनकर आपके कान खड़े हो गये। आप जानते थे कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के परिणाम को विफल करने के लिए अंग्रेज षडयन्त्र कर रहे हैं। जनरल हैड क्वाटर के एक अंग्रेज अफसर ने, जिसको उपनिवेशों की जनता के साथ सहानुभूति थी मेजर जयपालसिंह को 'मैना ऑपरेशन' की योजना दे दी थी और उस दस्तावेज को भारत के राजनीतिक दलों तक पहुंचाने की सलाह दी और इस सलाह को मानकर सभी राजनीतिक दलों तक यह दस्तावेज पहुंचाई गई। इस पर साम्यवादी पार्टी ने अवश्य कुछ कदम उठाये, पर शेष पार्टियां मौन रहीं। इस दस्तावेज में खास बात यह थी कि भारत तथा

बर्मा के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए अंग्रेज कबीलों के लोगों को हथियार देकर खड़ा करने की योजना कर रहे थे। विमानों द्वारा उनको सैनिक सामग्री पहुंचाने की योजना थी। मेजर जयपाल सिंह का कथन है कि आकिनलेक ने उत्तर पश्चिम सीमा पर दौरा किया। उसके पीछे सी 46 विमानों की एक टुकड़ी ने उड़ानें भरी। सम्भवत उनसे हथियार भी गिराये। इन्हीं हथियारों से पठानों ने कश्मीर पर आक्रमण किया था, इन्हीं से कारनों ने बगावत की थी और इन्हीं से नागालैण्ड में कई वर्षों तक विद्रोह चलता रहा था।

## अंग्रेजों द्वारा भारतीय सेनाओं से हथियार रखवा लेना

स्थान स्थान पर भारतीय सेना की यूनिटों द्वारा किए जाने वाले विद्रोहों और भारतीय सैनिकों द्वारा अंग्रेजों पर गोली चलाई जाने की घटनाओं को देखकर अंग्रेजों ने यह उचित समझा कि भारतीय सेनाओं से हथियार रखवा लिए जाएं। बहुत सम्भव है, नाविक विद्रोह ने उनकी आंखें खोल दी थीं। नौ सेना के लोग, बम्बई की सड़कों पर निकल पड़े थे, ब्रिटिश सैनिक उनको घेर रहे थे। यह अंग्रेजों के लिए बड़ा संकेत था। ज्यों ही मेजर जयपाल सिंह अपनी यूनिट में पहुंचे तो देखा उनसे बाद का वरिष्ठ अंग्रेज अफसर यूनिट के हथियार क्वार्टर गार्ड्स में रखवाकर ताला बंद कर चुका था। वायरलैस केन्द्रों में भारतीय ऑपरेटर हटाकर अंग्रेज ऑपरेटर लगा दिए गए थे। इस तरह अंग्रेज तैयारी कर रहे थे। उधर सेना में निश्चित हो गया था कि ज्यों ही अंग्रेज हमारे नौ सेना के जहाजों पर फायर करें, सेना के हमारे सभी संगठनों को बगावत कर देनी चाहिए और माच की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

अरुणा आसफअली और जयप्रकाश नारायण विद्रोही सैनिकों का समर्थन कर रहे थे, पर गांधीजी के हस्तक्षेप से मौन हो गए। सरदार पटेल और आकिन लेक की मध्यस्थता से नौ सैनिकों से हड़ताल वापस लेने के लिए कहा गया था। सेना का विद्रोह राष्ट्रीय नेताओं के हस्तक्षेप से शांत हो गया और अंग्रेज साम्राज्यवादियों को अगस्त 1946 में व्यापक पैमाने पर हिन्दू मुस्लिम झगड़े कराने का मौका मिल गया।

## ऑपरेशन-एलाइन्स और आवडी से धोखा

'आपरेशन-एलाइन्स' ब्रिटिश शासन की एक ऐसी चाल थी जिसके द्वारा वे भारत में मुक्ति आन्दोलन को असफल बनाने पर तुले थे। इस योजना के अनुसार अंग्रेज फौजी टुकड़ियां को भारतीय जनता को कुचलने के लिए चारों तरफ

फैल जाना था। इनका मदद तथा रसद दी वा याम विमानो द्वारा होता था। इसका कारण है कि उनको डर था कि भारतीय सत्ता व अन्य साधना का नष्ट कर सकते है। एयर सप्लाई की जिम्मेदारी मेजर जयपाल सिंह की यूनिट को सौंपी गयी थी। इसका भी एक विशेष कारण है और वह यह है कि चौसा के जगलो म बनी छावनी के अंग्रेज सैनिक अमानुषिक परिस्थितियो म जी रहे थे और एक एक करके सेना छोडकर जा रहे थे। तकनीकी जगह भरने के लिए अंग्रेज किसी कीमत पर उपलब्ध नही था। इसीलिए आवडी से इनका ट्रासफर रद्द करके चौसा कर दिया गया था।

मेजर जयपाल सिंह ने पहला काम तो यह किया कि बडा भारी खतरा मोल लेकर 'आपरेशन एलाइस' की योजना को राजनीतिक दलो तक पहुचा दिया, स्वय उसको छपवाकर बटवा दिया और तीसरे आपने योजना बनाई कि बैरकपुर पनागढ तथा पूर्वी कमान के अन्य एयर सप्लाई अड्डा तथा दक्षिणी-पश्चिमी कमान के अड्डा का बेकार कर दिया जाएगा, पैराशूटा मे छेद कर दिय जाएग और अन्य सामान वाले डिपोज का आग के हवाल कर दिया जायगा। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने भी आपरेशन एलाइस पर किताब छापकर ब्रिटिश-साजिश को बेनकाब कर दिया था। चौसा पर कनल एग्लिस तथा अन्य अंग्रेज अफसरो से आपकी निरतर टक्करें होती रही थी। पर आप अपने काम पर मुस्तैद थे, अंग्रेज यदि आपरेशन एलाइस पर काम करते तो आपकी यूनिट उनको खाक मे मिला देती, मेजर जयपाल सिंह की यह महान् राष्ट्रीय सेवा थी, जिसको नेताजी की सेवा से कम महत्व नही दिया जा सकता।

## एक और जासूस के हाथ पडते पडते निकल गए मेजर जयपाल सिंह

सगठन ने, आपको कलकत्ता जाकर मेजर जनरल ए० सी० चटर्जी से बातें करने का काम सौंपा। आप गए और चटर्जी से उनके आफिस मे मिले। मेजर जनरल ने उनको घर पर बुलाया और सभलकर आने के लिए इसलिए कहा कि उनका घर पुलिस की नजरो म था। वह सादा वेश म गए। उनसे बातें हुइ, योजना बनी। 15 अगस्त 1946 का अतरिम सरकार की स्थापना हुई। उसम केवल काग्रेस शामिल हुई। मुस्लिम लीग ने सीधी कार्यवाही का नारा लगाया सारा देश साम्प्रदायिक वातावरण मे डूब गया। मेजर साहब की आत्मा रो उठी।

सितम्बर 1946 म सगठन की कलकत्ता मे एक बैठक हुई। यह बैठक बैरिस्टर की पत्नी नीलिमा डे न अपन घर पर बुलाई थी। नीलिमा डे एक जासूस थी। मीटिंग मे फैसला लिया गया था कि मेजर जयपाल सिंह को अडर ग्राउण्ड हो जाना चाहिए और वह अक्टूबर 1946 म अडर ग्राउण्ड हो गए। अण्डर ग्राउड होने से

पहले एक घटना घटी। नेहरू का प्रोग्राम नेफा पर उड़ान भरने के लिए इधर से जाने का था। कर्नल एगिलस ने मेजर जयपालसिंह से कहा—"मुझे उम्मीद है कि उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश की तरह वह इसका भी मजा लेगा।" बहुत मुमकिन है कि अंग्रेजों की कोई गुप्त योजना हो कि सीमांत प्रदेश के समान इधर भी नेहरूजी पर हमला किया जाय और भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के कर्णधार को खत्म कर दिया जाए। मेजर जयपालसिंह कांग्रेस की आन्दोलन नीति से असंतुष्ट थे, यह कर्नल एगिलस जानता था, इसलिए उसने उक्त बात उनसे कही थी, किन्तु मेजर साहब की देशभक्ति को नहीं समझता था। वह नहीं जानता था कि मेजर जयपाल सिंह सैद्धांतिक मतभेद रखते हुए भी नेहरू जी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनकी सुरक्षा के लिए उतने ही सजग थे, जितना कि अपनी सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिए।

आपको राय ने भी बताया था और एक अमेरिकन अफसर ने भी कि नेफा में नेहरू के लिए कुछ खतरा हो सकता है। आपने तुरन्त एक आदमी कलकत्ता भेजा और उसके द्वारा एक बेनामी पत्र नेहरू जी के लिए भिजवाया जिसमें नेफा-यात्रा को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी। उसी शाम, यूनिट के वायरलैस पर, इनके संगठन ने इनको बताया कि 'गद्दारों' तुमको गिरफ्तार कर लिया जायगा।

## भूमिगत जीवन-यात्रा की ओर पहला कदम

जब मेजर जयपाल सिंह को, यह मालूम हुआ कि उनके साथ धोखा हो गया है और अंग्रेज उनको गिरफ्तार करने वाले हैं, तो पहला काम उन्होंने यह किया कि अपने कर्नल एगिलस को खूब सुनाई, उसको कह दिया कि अब अंग्रेज भारत से भागने ही वाले हैं। इसके बाद, वह जहाज से कलकत्ता आए। कलकत्ता कर्फ्यू में डूबा था। वह ग्रांड होटल में ठहरे। वहां के सभी साथी इनसे मिलने आए। यह सेना से भाग चुके थे। अगले दिन वह जनरल चटर्जी से मिले। गुप्त दस्तावेज उनको सौंपे और स्वयं लेफ्टीनेण्ट हामिद बुखारी की सहायता से, पार्क सरकस के एक अमीर मुस्लिम के घर ठहरे। दूसरे दिन हामिद ने उनको कलकत्ता बबई मेल से बबई को भेज दिया। बबई पहुंचकर हामिद बुखारी कलकत्ता आ गए। यहां ग्रीन होटल में ठहरे। अभी वर्दी पहने रहते थे और मेजर कौल के नाम से पुकारे जाते थे। कुछ दिन बाद, नागरिक वेश में, बोरी बंदर के होटल में रहने लगे। इनको गायब देखकर इनकी यूनिट ने हड़ताल कर दी। उनका डर था कि अंग्रेजों ने उनकी हत्या कर दी है। पहले अंग्रेजों ने यूनिट को बताया कि वह कलकत्ता किसी काम से गए हैं, लेकिन बाद में आरोप लगाया कि वह रुपया लेकर भाग गया है, वह जालसाज था। इसका आपने कर्नल एगिलस को पत्र लिखकर विरोध किया और उससे कहा—' मैं स्वस्थ हूं और रहूंगा जब तक कि तुम लोग इस देश से

भाग नही जाते। मिसज नीरेन डे कलकत्ता म जनरल चटर्जी की बेटी समिली और उनस कहा कि वह जयपाल स मिलना चाहती है। बेटी न पिता से बातें की। पिता न जयपाल सिंह से सपर्क किया। कलकत्ता उनके लिए खतरे की जगह थी, पर चटर्जी की बात टाली नही जा सकती थी। वह वहा पहुचे, चटर्जी से मिले, उनके कहन पर मिसेज डे के घर गए। वह घर पर नही थी। डे से बातें हुइ, डे ने बताया था कि वह जासूस है। लेफ्टीनेण्ट ब्राउन और वह तुमको गिरफ्तार कराने की कोशिश म है। तुम उनसे बचो। मिस्टर डे देशभक्त थे। अत उ होने मेजर जयपाल सिंह को बचा दिया।

बम्बई आन पर आर० के० करंजिया स मिले, समाजवादी पार्टी के नताओ स मिले, मेरठ काग्रेस-अधिवेशन के समय काग्रेस नताओ से मिले, लेकिन सब व्यथ। राजनीतिक दल सेना के इन विद्रोहमुखी लोगो के सहयोग के प्रति उपेक्षित थे। अत आपने सगठन को भग करन का निणय लिया। सगठन ने, इनको सलाह दी कि वह भूमिगत ही रहें और आजादी के बाद ही प्रकटित हो।

## आजादी का प्रकाश लेकिन मेजर जयपाल सिंह के लिए अमावस की रात

आजादी के बाद, आपने भारत के प्रधानमत्री को खुला पत्र लिखा और अग्रेजो द्वारा लगाय गए आरोपो के उत्तर दिय और समपण की इच्छा प्रकट की। 3 सितम्बर 1947 को आप दिल्ली छावनी मे, एरिया कमाडर जनरल राजेन्द्र सिंह से मिले। जनरल न इनसे कहा था—"प्रधानमत्री के दफ्तर ने फोन किया था कि तुम एक भगोडे हो।' उसी समय, एक अग्रेज कनल न कहा— 'सर ! यह कम्युनिस्ट है, देखिए यह वर्दी म भी नही है। मजर जयपाल सिंह ने उसको डाट दिया, लकिन जनरल न गिरफ्तार करन का आदश द दिया। उनको स्टाफ कार म राजपूताना राइफल्स ऑफीसस क्वाटस म लाया गया और वहा स फोट विलियम म कलकत्ता भेज दिया गया। जहा वह एक वष तक रहे। उनकी सारी शक्ति, अरमान, देशभक्ति ऊची ऊची दीवारो की कैद म छिजती रही। उनकी देशभक्ति का वह बदला मिला। राष्ट्रीय सरकार भी अग्रेजो के लगाये आरोपो के बहकावे म आ गई और एक निहायत पाक-दामन इसान, एक पक्के देशभक्त तथा लोकतत्र क प्रति निष्ठावान मानव को सडी हुई जिन्दगी जीन क लिए मजबूर कर दिया।

फोट विलियम की दीवारो म एक साल गुजारन क बाद, दिसम्बर माह की एक शाम को, एक सदश वाहक सीधा उन तक आया और वह किले स बाहर हो गए थ, एक लम्बे अडर ग्राउण्ड जीवन की यात्रा क पथ पर चलन के लिए।

अब वह सी० पी० एम० के सदस्य थे। तीन महीने, आपने पार्टी के केन्द्रीय अड्डे पर गुजारे और फिर उसके बाद वह पहुंच गए तेलगाना में किसान-आन्दोलन की देख भाल करने के लिए।

रास्ते में ट्रेन के इन्टर क्लास में सफर करते हुए पुलिस के लोगों से तेलगाना की जनता के साथ होने वाले अत्याचारों की आप ने जो कहानियां सुनीं, उनकी रूह कांप उठी। पुलिस वाले आपस में ही बलात्कार, लूट पाट और मार पीट की डींग हांक रहे थे और मेजर जयपाल सिंह उसको तटस्थ बने सुन रहे थे।

## आन्ध्र-प्रदेश के तेलगाना क्षेत्र में भूमिगत जीवन के दिन

तेलगाना में एक लम्बे अर्से तक किसान आन्दोलन चला था। उस आन्दोलन का नेतृत्व निश्चय ही साम्यवादी दल के हाथों में था। सरकार की नजर में अंग्रेजों से अधिक खतरनाक साम्यवादी दल था। सन् 1946 में ही उसने समस्त कार्यालयों पर छापे मारे गए थे। तेलगाना के विषय में, मेजर जयपाल सिंह की राय है—"आन्ध्र की जनता ने, तेलगाना के किसानों और पार्टी ने, पिछले चार सालों में जो कुछ देखा और भुगता था, इन प्रांतों से बाहर रहने वाले लोगों को न तो उसकी समुचित जानकारी थी और न हमने उसे ठीक से समझा।" (आजादी के परचम के तले, पृष्ठ 99)

आन्ध्र प्रदेश कमेटी के हेड क्वाटर्स में आप कुछ दिन रहे। यहां कामरेड नाग से बातें हुई, आन्दोलन की रूप रेखा जानी, हैदराबाद आदि शहरों की बदली स्थिति को देखा, सरकार द्वारा आन्दोलन के दमन का दृश्य देखा। एक दिन, अदरूनी क्षेत्र से एक संदेशवाहक आया, जिसका काम था, शहर के बाहर बीस मील तक उनको रास्ता बताना और फिर रक्षक टोली के हवाले इनको कर देना। सौ कारतूस वाला एक रिवाल्वर इनकी धोती की फेंट में बंधा था और इनको सशस्त्र सैनिकों के उस स्थान की ओर ले जाया जा रहा था, जो ठीक इनकी नाक की सीध में था। आगे का दो सौ मील का फासला आपको पैदल और कई पड़ावों के बाद तय करना था।

एक चांदनी रात में टीलों के बीच, खेतों में होकर वह जा रहे थे कि दो गोलियां चलने की आवाज सुनकर पथ प्रदर्शक के यह कहने पर कि छिप जाओ दोनों एक झाड़ी के पीछे छिपे और फिर रास्ता बदलकर आगे बढ़ गए। कटीली झाड़ियां पार करके, किसान का बेटा, उनका वह पथ प्रदर्शक, उनको लिए जा रहा था। उसको अपने ठिकाने का रास्ता भली प्रकार मालूम था, वहां तक न पहुंच पाने की स्थिति में, उनको कहां रखा जाएगा, इसका भी ज्ञान था, वह नादान गांवड़ू किसान बालकों से भिन्न था, उसको अपनी जिन्दगी का रास्ता चुनने

का ज्ञान था। आठ घटे निरतर चलने के बाद जब व थक गए, तो पथ प्रदशक किसान बालक न जलाशय स लाकर उनका पानी दिया। दस घण्ट चलने के बाद पथ प्रदशक इन दोनो को पहाडी पर एक बडी चट्टान के पीछे छिपाकर स्वय सशस्त्र टाली का बुलाने के लिए चला गया। बकरी की तरह आवाज निकालकर पथ प्रदशक ने सशस्त्र टुकडिया को बुलाया। उसके बाद, इनको किसी अपरिचित जानवर के खाखियाने की आवाज सुनाई पडी, यह आवाज किसी गुरिल्ला की थी, जो अपनी टुकडी को बुला रहा था। उसके बाद, झाडियो के पीछे से कई छायाए प्रकट हुई और उनके गुरिल्ला सरदार न दौडकर गमजाशी के साथ दोनो का स्वागत किया, लाल सलाम दिया। बाकी के तीनो गुरिल्लाओ ने बारी बारी स इन दोना को लाल सलाम दिया और एक पहाडी पर ले गए। जहा समतल चट्टान को बिछौना, बनाकर अपन थक शरीरो को आराम दन के लिए वे लेट गए। पर नीद नही आ रही थी, जब कि उनके चारा ओर कामरेड खर्राट भर रहे थे।

तेलगाना के बहादुर किसाना का डाकू, नरभक्षी, आतकवादी तथा उन्मादी आदि अनेक नाम दिए गए थ, लेकिन मेजर जयपाल सिंह न अपनी आखा से जो कुछ देखा और समझा था, वह इस प्रकार है—'1947 म, जब क्रातिकारी उभार की लपटा न तलगाना म सामती दुर्गों का घेर लिया, जब रियासत का गाधी टोपी वाला नतृत्व नहरू निजाम की पनाह म मुह छिपान क इरादे से मद्रास प्रात म भाग गया, जब सवहारा की पार्टी न वक्त की नजाकत का समझकर तेलगाना क किसाना, रजाकारो के हाथा से अपनी इज्जत, अपन घर और माल का रखवाली करने क लिए, हाथा मे हथियार उठाकर सगठित करने का फैसला किया तब न हा कुदना घर स निकलकर सबस पास क पार्टी हैड क्वाटस म जा पहुचा (आजादी के परचम क तले, पृष्ठ 112)। कुदना चौदह वष का था। उसकी मा, उसका पार्टी म जान से रोक रही थी, प्रलोभन द रही थी, पर वह जान की जिद पर अडा रहा। अत मे, उसने कहा— नही, आप रजाकारो से लडन स किसी को रोक नही सकत। आपको मुझ भर्ती करना ही पडेगा।' (आजादी क परचम के तल, पृष्ठ 112) कुदना और उनके साथियो की कायवाही को देखकर, आपका विश्वास हा गया था— अपन सदिग्ध हथियारा की मदद स अगर य मुट्ठी भर नौजवान निरे डाकुओ क रूप म काम करत तो इनके लिए दुश्मन का मुकाबला करना कभी मुमकिन न होता' (आजादी के परचम क तले, पृष्ठ 113)। 'इन लडका को एक नजर भर देखन पर य भयकर झूठ मेरे सामन बेनकाब हो गए' (आजादी क परचम के तले, पृष्ठ 114)। आपका कहना है कि सरकारी आदश के अनुसार इन क्रातिकारियो को एक दाना दन की सजा मौत थी, फिर भी लाग बढ़िया चावल खान को दन थे। सरकारी प्रचार था कि य लाग बलपूवक चदा तथा सामान वसूल करते थे, आपका मत है कि जनता इनको अपना मानती थी, अत

बिना मांगे देती थी। उन पुस्तक म, पृष्ठ 115 पर एक घटना उद्धत है। एक क्रांतिकारी किसान ने उनको बताया था कि पुलिस उसकी बीवी और तीन साल में बच्चे को गिरफ्तार कर चुकी है। बीवी का काला मुह करके शहर म घुमाती है लोगो को बताती है कि यह वेश्या है। उसे धमकी दी जाती है कि या तो वह मरा पता ठिकाना बताए नहीं तो बेटे की हत्या कर दी जायगी। उसने इतना यह भी बताया कि हमने भी पुलिस और फौज के लोगो को गिरफ्तार किया है, पर उनको रिहा कर दिया। उनके साथ इसानियत का सलूक किया और घायलो की चिकित्सा कराई। यहा, मेजर जयपाल सिंह के लिए गुरिल्ला यूनिट का दखना एक नया तजुर्बा था।

य शाम को यात्रा करते। 20 मील का फासला तय करने के बाद कारवा रुकता, तब आराम करने के लिए रुकते। उनकी महनत ईमानदारी, अपने अधिकारो की रक्षा के लिए हथियारबद लडाई को देखकर उनकी आत्मा को ठेस लगती। उनके साथ की गई गद्दारी पर क्रोध आता और गहरे विचारो म डूब जाते। इस पडाव तक पहुचते पहुचते वह तेलगाना के आन्दोलन की आत्मा को जान गए थ। इस पडाव म साथियो न उनको चावल, दूध, दाल और किशमिश का विदाई भोज दिया। उनके सुरक्षित पहुचने की मगल कामना की और आत्मीयता भरी विदाई स भाव विभोर कर दिया। पहाडी झरना को पार करके हजार फीट ऊची पहाडी को चढकर और दो हजार नीचे उतरकर और ऐसा कई बार करके वह उस स्थान पर पहुचे, जहा अगली मजिल तक ले जाने वाला मार्ग-दर्शक मिलने वाला था।

आगे जाने के लिए रास्ता कौन-सा अपनाया जाए, इस प्रश्न पर कमाण्डर और कुदना म बहस हो गई। कुदना का तर्क था कि उसे एरिया हैड क्वाटर स जो आदेश मिला है, उसका पालन करेगा। कमाडर सुरक्षित रास्ता ढूढना चाहता था। तब रगन्ना की पुकार हुई, उसने दोनो के रास्ता को अस्वीकार कर दिया और एक तीसरा रास्ता बताया। जब इस पर भी आपत्ति हुई तो वहा मौजूद सभी कामरेडो की बैठक हुई। उसम रास्ता का चयन विचार का विषय था। तीनो ने अपने-अपने रास्ते के गुणो का लेखा प्रस्तुत किया। अन्त म, खुले विचार के बाद तीसरा रास्ता ठीक पाया गया। इस प्रकार निर्णय करने की यह पद्धति समवेशम कहलाती है। सफर और रास्ते की भयकरता का वर्णन मेजर जयपाल सिंह इस प्रकार करते हैं— रात के लगभग दो बजे तक हम चलते ही रहे। ठडी हवा चल रही थी। कुचली हुई घास की महक हवा मे भरी हुई थी। कही बहुत दूर शेर की दहाड सुनाई दे रही थी। एक सिसकारता हुआ साप हमारी बगल स होता हुआ बायी ओर की झाडी म घुस गया। मच्छर लगातार हम काट रहे थे। अचानक, बादल गरजने लगे और बिजली कडकने लगी। काली को बहरा कर

देने वाले एक भयकर तूफान न जगल को ढाप लिया। हमारे ऊपर घने बादल मडरा रहे थे और नीचे ही होत जा रहे थ। अचानक जोरदार बारिश होन लगी' (आजादी के परचम तले, पृष्ठ 125)। इन पंक्तियों से मेजर जयपाल सिंह का लेखक उभरकर आता है। उनकी गणना एक बहुत अच्छे रिपोर्ताज लेखक के रूप म की जा सकती हैं।

लगातार चलने के बाद, रगन्ना खुशी से नाच उठा था। उसन अपन दो साथियो को चट्टान के नीचे से निकलकर आस देख लिया था। उनके हाथ, लाल सलाम की मुद्रा म उठे हुए थे। उसकी खुशी का विशेष कारण यह था कि उसका बताया रास्ता ठीक निकला था। इसके बाद दिन म आराम करन के लिए दो हजार फीट ऊंची पहाडी पर चढे, दोनो ने मार्गदर्शन किया था। पहाडी पर चढकर सागर साहब तथा आपन आस पास के किसानो चरवाहो, गावो और पशुओ को देखा। आपने देखा कि किसान तथा चरवाहे इनको पुलिस की गश्त की सूचना देत थे, उनको छिपाने के लिए प्रयास करते थ। एक चरवाहे ने, उनसे बर्मा के कामरेड तथा रूसी किसानो की हालत के बारे मे सवाल किए। उनकी स्थिति जाननी चाही। उसकी जिज्ञासा का समाधान किया रगन्ना ने। उसने चीनी किसानो तथा मजदूरो की बातें की, हिन्द चीन और बर्मा के किसानो के किस्से बयान किय। उनकी राजनीतिक चेतना देखकर मेजर साहब को आश्चय हुआ।

जब वह एरिया हेड क्वाटर्स की ओर बढे तो कई युवा तथा युवतियो ने उनक साथ चलन का प्रस्ताव किया। वे लोग पार्टी के भीतर के सघष के विषय म जानने के इच्छुक थे। व जानना चाहत थे कि पी० सी० जोशी किसकी वकालत कर रहे है, डागे साहब का क्या मत है? आ ध्र के साथी किस प्रकार क्राति और सशस्त्र सग्राम की रक्षा कर रहे है। इन प्रश्नो के उत्तर म रीजनल कमेटी के सेक्रेटरी ने जो चित्र प्रस्तुत किया था, वह मेजर साहब की नजर से आशाजनक नही था।

तेलगाना के किसानो की ईमानदारी, सघष शीलता, निजाम के फासीवाद तथा रजाकारो की क्रूरता का सामना करन की क्षमता देखकर मेजर जयपाल सिंह जितन उल्लसित हुए थे, पार्टी नेताओ की नीति और जनता स अलगाव को देखकर उतने ही निराश। उनके भीतर छिपा महान् सघर्षशील व्यक्तित्व कुठित तो नही, पर विचलित अवश्य होने लगा था।

7 नवम्बर 1947 को कलकत्ता फोर्ट विलियम की जेल स मेजर जयपाल सिंह न भारत के प्रथम प्रधानमंत्री प० जवाहरलाल नेहरू के नाम एक पत्र लिखा था। इस देश की राजनीतिक गतिविधि, स्वतत्र भारत के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्य के षडयत्र और अपन अधिकारो के लिए सघषरत क्रांतिकारी मेजर जयपाल सिंह की मानसिकता को समझन के लिए यह पत्र बहुत उपयोगी है। यहा उसी पत्र के कुछ अश दिये जा रहे हैं—

"3 नवम्बर 1946 को जब मैं मोहन बाडी हवाई क्षेत्र से भूमिगत हो गया था, उस समय मैंने आपको विस्तार के साथ अपने भूमिगत होने का कारण स्पष्ट करते हुए पत्र लिखा था। यह पत्र, एक राजनीतिक नेता होने के नाते, आपको यह सूचित करने के लिए लिखा गया था कि ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध भूमिगत रहकर उस समय मैं क्या कदम उठा रहा था। उस वक्त ब्रिटेन द्वारा इस देश को इतनी जल्दी छोड़ जाने की कोई आशा व चिह्न नहीं थे और मैंने यह उचित समझा कि देश के राजनीतिक नेताओं को यह सूचित किया जाए कि ब्रिटेन द्वारा, मेरे इस प्रकार सेना से पलायन करने और उस पैसे के बारे में जिसे मैं अपने साथ लाया था, क्या रूप देने का प्रयत्न किया जायगा। ब्रिटिश शासन ने बहुत सतर्कता के साथ, भारतीय सेना की उस नियमित यूनिट को भंग करके जिसका मैं भूमिगत होने से पहले नेतृत्व करता था, मुझे काफी नुकसान पहुंचाया। 15 अगस्त से पूर्व यदि मैं किसी भी तरह से ब्रिटिश शासन के हाथ आ जाता तो मेरे साथ कुछ भी हो सकता था। 15 अगस्त के बाद यहां की गतिविधियों का संचालन करते हुए ब्रिटिश जनरल मेरे विरुद्ध केवल सेना से पलायन करने तथा आपराधिक विश्वास-भंग के आरोप दर्ज कराने पर सहमत हो गये।

'मैंने हर तरह का खतरा उठाते हुए क्रांतिकारी नेताओं को चेतावनी" नामक अपना पर्चा छपवाकर वितरित किया क्योंकि मेरी धारणा थी कि देश और नेताओं को यह जानना चाहिए कि ब्रिटेन क्या करने जा रहा है और यदि हम पाकिस्तान के बनने को रोकने के लिए देर हो जाने के कारण, कुछ कर सकने की स्थिति में न भी हों तो भी हम इसके जन्म के बाद उत्पन्न हुए खतरों का जवाब देने के लिए आवश्यक रोक थाम व तैयारी कर सकें। यह पर्चा देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय सभी लोगों को पहुंचा दिया गया था। आज कश्मीर में वे ही घटनाएं हो रही हैं जिनका एक वर्ष पूर्व मैंने अनुमान किया था। उस समय कुछ लोगों का ख्याल था कि मैं सपना देख रहा हूं। उत्तर पूर्वी सीमान्त में हमारे या बर्मा के विरुद्ध संकट उभरकर आयेगा। जैसा कि मैंने उस समय जिक्र किया था, नागा लोग भी हमारी चिंता का विषय बने हुए हैं। दार्जिलिंग के चाय बागानों के मालिकों द्वारा संगठित किए गए गोरखा लोग बंगाली विरोधी प्रचार में लगे हैं तथा तोड़ फोड़ करने वालों का तमाम विस्फोटक काम कभी फटकर भयावह रूप ले सकता है। लाहिया घाटी के कबील द्वारा इशारा मिलते ही किसी भी दिन असम पर चढ़ाई कर देने के लिए तैयार बैठे हैं। हैदराबाद की घटनाएं अब सब विदित हैं और आप देखेंगे कि शीघ्र ही वहां हमें एक आघात का सामना करना पड़ेगा। आज इस बंदीगृह में मैं पिछले इतिहास पर दुःख के साथ नजर डालता हूं और महसूस करता हूं कि काश ब्रिटिश षड्यन्त्र की सूचनाएं और रहस्य जो मैंने देखे और सूचित किए थे, उन पर आप लोगों ने भरोसा किया होता।

"15 अगस्त 1947 के बाद मैंने आपकी सरकार के समक्ष आत्म समर्पण करना बेहतर समझा।

"मैं एक समाजवादी हूं और अब इसे छिपाता नहीं हूं, जैसा कि मैंने पहले किया था। मेरे द्वारा सेना से पैसा और हथियार लेकर पलायन कर जाना सोशलिस्ट पार्टी द्वारा निर्धारित हुआ था, मैं एक बार फिर इसका खण्डन करता हूं। मैंने उनसे मेरठ तथा अन्य स्थानों पर उसी तरह संपर्क स्थापित किया जिस प्रकार से मैंने अन्य राजनैतिक नेताओं से संपर्क किया। मैंने कभी उनसे अपनी योजनाओं की स्वीकृति या अन्य किसी भी प्रकार की मदद नहीं ली।

'गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने के व्यक्ति के कुछ बुनियादी अधिकार हैं, जिनका प्रयोग करने पर एक साम्राज्यवादी शासन द्वारा उसे जेल में डाला जा सकता है, लेकिन वह निश्चित रूप से इस बात की उम्मीद करता है कि साम्राज्यवादी शासन के उखड़ जाने के बाद, एक स्वतंत्र तथा जनतांत्रिक देश की स्थापना होने पर, साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध अपने इस बुनियादी अधिकार का प्रयोग करने के आरोप में उसे कोई सजा नहीं दी जायगी।

"एक्शन कौंसिल ने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे ब्रिटेन के साथ शांतिपूर्ण समझौते में किसी भी तरह का विघ्न या अड़चन पैदा हो। हमने 'भारतीय सेना के सभी अफसरो! निर्णायक युद्ध के लिए तैयार हो जाओ' नामक अपने बुलेटिन में आपको शानदार औपचारिक बधाइयां दी थीं। यह बुलेटिन जनवरी 1947 में भारतीय सेना में वितरित किया गया था। ऐसा करके हमने अपना वचन तथा कर्तव्य निभाया, लेकिन जब हमने आपको 'देश के विभाजन के समझौते पर हस्ताक्षर करते देखा तो अपने संगठन में हमें दुखद संकट का सामना करना पड़ा। राष्ट्रीय एकता के लिए हमने हथियार डाल दिये।

'भूमिगत रहते हुए भी हम निष्क्रिय नहीं बैठे थे। संयुक्त सुरक्षा परिषद्, बाउण्डरी फोर्स तथा अंग्रेजों द्वारा सेना को संभाल कर रखने से संबंधित सूचनाएं जो कि अत्यंत आवश्यक साबित हो सकती थीं, उसी समय सरदार बलदेव सिंह के पास भेज दी गयी थीं, जबकि लार्ड माउण्टबेटेन इंगलैंड में ही थे। वास्तव में, ब्रिटेन द्वारा दिसम्बर 1946 में राष्ट्रीय आन्दोलन का विध्वंस करने की योजना बनाई गयी थी। यदि कांग्रेस द्वारा 6 सितम्बर के निर्णय तथा घटनाओं की नयी व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया गया होता तो ब्रिटेन द्वारा आग भड़काये जाने की योजना थी। लेकिन, अंग्रेज जानते थे कि कस दिन उनका इन्तजार कर रहे हैं।

'भारत में ब्रिटेन के कई शक्तिशाली दुर्गों को ढहा कर ब्रिटेन का प्रत्यक्ष संहार कर देने की हमारी योजना थी। हमने उसके ऐसे स्थानों पर चोट की ठानी जहां उसे इसकी कम संभावना थी। लेकिन, विभाजन का रोकने के लिए कदम उठाना न तो हमारे अधिकार क्षेत्र में आता था और न ही हमारी शक्ति थी। इस

केवल सेना तथा जनता के बीच संपर्क समितियां बनाकर कायम हुए तथा बेहतर बनाए गए तालमेल द्वारा ही रोका जा सकता था। मैं जानता हूं कि मैं असफल हुआ, लेकिन मुझे इस बात का संतोष है कि मैंने कम से कम असफल न होने का प्रयास तो किया।

"मुझे अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए दूसरों की गर्दन ताडन का पूरा अधिकार है।

"मेरी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। मैंने गुलामी और इसके परिणामों के विरुद्ध ब्रिटेन के अपने जन्म सिद्ध अधिकार का प्रयोग किया है। यदि वर्तमान सरकार मुझ पर उपर्युक्त अपराधों का आरोप लगाती है तो मैं और कई मामलों में अपना हाथ होना स्वीकार करता हूं, जैसे ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध का षड्यंत्र करना, सेना के रहस्य प्रकट करने तथा ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध निजी सेना एकत्र करना आदि।

आपको राज्य प्रधान होने के नाते पूरा हक है कि आप यह निश्चित करें कि मेरी योजना किसी प्रकार से भारत के हितों की विरोधी न तो अब है और न ही पहले थी। आपको जानकारी प्राप्त करने का सबसे बेहतर तरीका वही हो सकता है जो मैंने इस पत्र के अंत में बताया है।

"यदि भारत सरकार के प्रशासनिक अधिकारी अभी भी इस बात से संतुष्ट नहीं हो सके हैं कि मेरा सेना से पलायन और गुप्त काम किसी भी तरह से देश विद्रोही तथा देश को नुकसान पहुंचाने वाला नहीं था, तो उन्हें एक राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल बनाना चाहिए जिसमें दो दक्षिणपंथी तथा एक वामपंथी सदस्य हों और बंद कमरे में बैठकर जिसके सामने मैं सुरक्षापूर्वक अपनी योजना और गतिविधियों की तथा अपने सहयोगियों के नाम बताए बिना, ताकि उन्हें अपमान और उत्पीडन का शिकार न होना पड़े, खुला बयान दे सकूं और यदि उन लोगों के अन्य महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय मामलों में उलझे रहने के कारण यह संभव न हो तो मेरे मुकदमे को उस समय तक के लिए मुलतवी रखा जाए जब तक हम पूर्णत स्वतंत्र नहीं हो जाते और न्यायपालिका एक नये संविधान और कानून की धारा के अनुसार काम करना शुरू नहीं कर देती।"

यह पत्र मेजर जयपालसिंह की योग्यता, देशभक्ति, ब्रिटिश साम्राज्य की भारत विरोधी नीति उससे अंतिम क्षणों तक संघर्ष करके नाकामयाब बनाने के उनके अदम्य साहस का प्रतीक है। राजा महेन्द्र प्रताप के समान वह भी सैनिक-विद्रोह और राजनीतिक आन्दोलन के आपसी तालमेल के हिमायती थे। उनकी नजर सत्ता की कुर्सी पर नहीं अंग्रेजों के षड्यंत्र को नाकामयाब करके देश को आजाद कराने पर थी।

24 जनवरी 1956 को अपना भूमिगत जीवन कुछ राजनीतिक दलों की

सलाह पर तथा कुछ अपनी इच्छा से समाप्त करके आप प्रकट हो गए थे। मुजफ्फरनगर में जिस गर्मजोशी के साथ, वहां के किसानों, मजदूरों तथा अन्य लोगों ने उनका जबरदस्त स्वागत किया था, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। अनेक लोग उनसे फोर्ट विलियम की ऊंची ऊंची दीवारों से निकल भागने की योजना के बारे में पूछ रहे थे। खुफिया विभाग का आदमी पूछ रहा था कि दस वर्ष के दौरान आपने क्या किया था? लोगों में अफवाह थी कि आप सुभाष चन्द्र बोस के बारे में जानते हैं और उन्होंने ही देश की हालत समझने के लिए पहले इनको भेजा है।

मुजफ्फरनगर की इस बहादुर संतान का स्वागत करने के लिए जनता उमड़ रही थी, लेकिन जिला-कांग्रेस का आदेश था कि कोई कांग्रेसी स्वागत समारोह में शामिल न हो। लेकिन पार्टी अनुशासन को खूंटी पर टांककर एक दाढ़ी वाले मुस्लिम सज्जन वहां आये और बोले कि मुझसे कहा गया था कि मेजर जयपालसिंह कम्युनिस्ट हैं, इसलिए वहां नहीं जाना है, लेकिन मैं एक कम्युनिस्ट से मिलने नहीं, बल्कि एक वतनपरस्त इंसान का खैर मकदम करने आया हूं। मैं, मेजर का उसके अपने घर में, उसके अपने लोगों के बीच, स्वागत करता हूं। लोगों ने तालियां बजाकर उनकी बात का समर्थन किया। लेकिन जब कुछ दिन बाद आम चुनाव हुए और उसमें मेजर साहब संसद सदस्य के लिए चुनाव के मैदान में सामने आये, तो कांग्रेसियों ने कहा कि 'एक डाकू जिले में छुट्टा डोल रहा है' (आजादी के परचम के तले, पृष्ठ 2)। यह थी मुजफ्फरनगर के कांग्रेसियों की एक महान् देशभक्त और सच्चे इंसान के बारे में राय जबकि सत्य यह है कि मुजफ्फरनगर के कांग्रेसी तथा मिल मालिक का एक खत, एक मृतक डाकू की जेब से निकला था।

मैंने देखा है और मैं उनके परिवार की स्थिति से भली प्रकार परिचित हूं। मेरा विश्वास है कि मेजर जयपाल सिंह की गणना देश के उन सपूतों में होनी चाहिए, जो अपने तथा अपने परिवार के लिए कुछ इकट्ठा नहीं करते और जिनका तन मन देश तथा समाज के लिए समर्पित होता है। मेजर साहब ने कोई सम्पत्ति परिवार के लिए नहीं छोड़ी, जो कुछ छोड़ा है, वह है—समृद्ध भारत के निर्माण की क्रान्तिकारी परंपरा, देश के किसान तथा मेहनतकश लोगों की प्रगति की प्रेरणा और इंसान के सुखद तथा शान्त भविष्य के लिए उत्कट कामना।

तेलंगाना के किसानों की जुझारू शक्ति का स्मरण करके उनकी आंखें चमक उठती थीं और भारत में उभरती साम्प्रदायिकता को देखकर यह चमक गायब होने लगती थी। भारत के आम आदमी की बहबूदी, देश की साम्प्रदायिक एकता, देश में समता तथा सम्पन्न लोकतंत्र का उन्मेष का नाम था, मेजर जयपालसिंह देश की राष्ट्रीय एकता का मधुर गायन था, मेजर जयपालसिंह। वह एक इंसान

था, जो सुखद तथा सम्पन्न समाज की कल्पना में जी रहा था। उनके स्वर्गवास के साथ एक निष्ठावान इंसान चला गया, महान किसान समाज का महान् समर्थक विदा हो गया और चला गया भारत की किसान संस्कृति का मूर्तिमान जीता जागता इंसान।

## मेजर जयपाल सिंह के जीवन की प्रमुख घटनाएं

15 जुलाई 1916 जिला मुजफ्फरनगर के गांव कुरमाली में जन्म।
1935-1937 बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में शिक्षा
1938 1940 सेंट जान्स कालिज आगरा में स्नातकोत्तर शिक्षा
1941 — सेना में कमीशन मिला
1945 — सेना में मेजर बने
1946 — असम सैनिक अड्डे से भूमिगत हुए
1947 — सितम्बर तक भूमिगत रहे। इसी वर्ष जनरल राजेन्द्र सिंह के सामने हाजिर हुए
1948 — फोर्ट विलियम कलकत्ता में नजरबंद, यहीं से फरार
1949 — किसान आन्दोलन में मदद करने के लिए काकद्वीप (बंगाल) गये
1950 — उषा से विवाह। किसान संघर्ष में मदद करने तेलंगाना
1951 — तेलंगाना से वापस आये
1952 1956 भूमिगत रहे
1953 — पांडिचेरी गये
24 नवम्बर 1956 पार्टी के फैसले के अनुसार खुले मैदान में काम, मुजफ्फरनगर में अभूतपूर्व स्वागत
1957 — लोक-सभा का चुनाव लड़ा
1961 1962 दिल्ली में रहे
1964 — सी० पी० एम० के मुख्यालय कलकत्ता में चले गए
1970 — आजादी से पहले के मामले में दण्ड, एक वर्ष अलीपुर सेंट्रल जेल, कलकत्ता में रहे
1972 — दिल्ली रीजनल कमेटी के सेक्रेटरी चुने गए
25 जून 1975 आपातकाल में मीसा में गिरफ्तार
1976 — जेल से रिहा हुए
1977 — दिल्ली राज्य कमेटी के सेक्रेटरी चुने गए

1978 — दसवीं पार्टी कांग्रेस में केन्द्रीय कमेटी के सदस्य

1980 — वियतनाम, लाओस और कम्पूचिया का दौरा किया

25 जनवरी 1982 सी० पी० एम० की 11वीं कांग्रेस के ठीक पहले केन्द्रीय कमेटी की बैठक में भाग लेते हुए विजयवाड़ा में स्वर्गवास।

# 'कर्मयोगी शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द'

स्वामी केशवानन्द की कहानी 'गुन्डी के लाल' की कहानी है। जिन्दगी की न्यूनतम आवश्यकताओं के अभाव मे राजस्थान के सीकर जिले के मगलूणा गाव म साधारण जाट परिवार में पौष सवत 1940 ईस्वी सन 1883 मे आपका जन्म हुआ। इनके पिता का नाम ठाकरसी और माता का नाम सारा था। बीरमा नाम दिया था मा बाप ने। ब्रह्मा का अप्रमथ है बीरमा। मा-बाप का इकलौता बेटा था केशवानन्द। बचपन मे ही बीरमा के सर से पिता का साया उठ गया। मा ने बडी कठिनाइयो और दुखो मे बीरमा को बडा किया। गायें चराकर अपना पेट पालने वाले बीरमा का दुखा ने दुर्दिनो ने साथ नहीं छाडा, विक्रमी सवत 1956 के भयकर अकाल मे बीरमा की मा भी चल बसी। जाए तो कहा ? आश्रय पाये तो कहा ? ऊपर आसमान नीचे धरती। कौन सहारा देता विकट परिस्थितिया से घायल बीरमा को। पापी पट को भरने की समस्या थी बीरमा के सामने। वह भटकता, दर दर ठोकर खाता मोहर, सिरसा, भटिण्डा गिदडबाह, मालोर होता हुआ झुमिया वाली के कुछ समाज सेवी लागा की सहायता से फिरोजपुर अनाथालय मे आश्रय पा सका। वही पर डेढ वष बीता। भीषण, विकट परिस्थितिया मे जुझारू जिन्दगी को लेकर जो चट्टान की तरह खडा रहन की क्षमता हासिल कर लेता है, महानता उसकी दासी बनकर सदा सदा साथ रहती है। बीरमा पढना चाहता था। उसके दृढ सकल्प के कारण सरस्वती उसक हृदय पर आसीन हा गयी। अनाथालय छोडकर इधर उधर गावा म भटकन के बाद सवत 1965 ईस्वी सन 1904 मे सस्कृत पढने की लालसा से बीरमा फाजिल्का के उदासी साधु श्री कुशल दासजी के पास गया। वही वह गुरु का वरद हस्त प्राप्त कर सस्कृत म पारंगत हो गया।

सन् 1905 6 म प्रयाग के कुभ मेले म अवधूत हीरानन्द से केशवानन्द नाम पाया। गुरु आज्ञा से केशवानन्द हरिद्वार अमतसर आदि स्थाना मे सस्कृत पढन गये। संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर उन्होने देश भ्रमण किया—वही से

उन्हे तीर्थ स्थानों, सग्रहालयो और शिक्षण सस्थाओ का अनुभव मिला। सन 1908 म गुरु-गद्दी के उत्तराधिकारी बने जिसे कालान्तर मे पुस्तकालय का रूप देकर त्याग दिया।

स्वामी केशवानन्द जी का जीवन कोटि-कोटि श्रद्धालुओं के लिए प्रेरणा-पुन्ज है। वेदान्त दशन का गहन अध्ययन किया था स्वामी केशवानन्द जी ने। लोकमान्य तिलक के गीता रहस्य ने निष्काम कमयोग की साधना दी थी। महर्षि स्वामी दयानन्द केशवानन्द जी के प्रेरणा स्रोत थे। सन्त हृदय स्वामी केशवानन्द जी न राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के अहिंसात्मक अस्त्र को धारण कर राष्ट्र-सेवा के महान यज्ञ को समर्पित हो गये। कमनिष्ठ महान सृजनशील शिक्षाविद स्वामी जी वस्तुत एक युग पुरुष थे।

कम ही जीवन है। इस बीज मत्र को धारण कर वे कम क्षेत्र मे कूद पड़े। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के नेतत्व म सचालित आजादी के आन्दोलन मे 1921 से 1931 तक सक्रिय रहे। स्वामी जी ने दो बार जेल-यात्राए की। स्वामी केशवानन्द जी के सृजन की लम्बी फहरिश्त है। सन 1925 म साहित्य सदन अबोहर की स्थापना की। राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रसार प्रचार, शिक्षण प्रशिक्षण की दिशा मे स्वामी केशवानन्द जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जम्मू कश्मीर मे हिन्दी भाषा की विभिन्न परीक्षाए आयोजित की पुस्तकालय स्थापित किये। स्वामीजी राष्ट्र भाषा हिन्दी मे कौमी एकता के दशन करते थ। उनकी मान्यता थी कि हिन्दी ही राष्ट्र को एकता के मजबूत सूत्र म बाधे रख सकती है। स्वामीजी नागरी प्रचारिणी सभा काशी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के आजीवन सदस्य रहे। उन्हे राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए किये महान कार्यों के लिए राष्ट्र भाषा गौरव की उपाधि से विभूषित किया गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने साहित्य वाचस्पति की उपाधि का मान दिया। 1952 से 1964 तक स्वामीजी राज्य-सभा के सदस्य रहे।

स्वामी जी द्वारा प्रतिस्थापित ग्रामोत्थान विद्यापीठ सगरिया उनकी अनुपम देन है। राष्ट्र को उसमे कृषि कला, विज्ञान, वाणिज्य, महाविद्यालय शिक्षा महाविद्यालय, सग्रहालय, पुस्तकालय औषधालय एव 300 एकड भूमि म विशाल कृषि फाम विकसित कर ग्रामोत्थान विद्यापीठ को नया चिर अमर रूप दिया है स्वामी केशवानन्द जी ने। यह शिक्षा का विशाल वट-वृक्ष ग्रामो से आये छात्रो पर व्यक्तित्व विकास की शैक्षणिक छत्रछाया किये हुए है। समाज सुधार महिला कल्याण का प्रतीक बन गया है सेवा भावी सन्त का यह सस्थान। स्वामी जी एक सिद्धहस्त लेखक, एक इतिहासविद, कला, सस्कृति, साहित्य, समाज सेवा के क्षेत्र म सदा-सदा के लिए जनता द्वारा सादर याद किय जाएगे। छुआछूत रूढ़िवादिता अधविश्वास, असमानता के घोर विरोधी सन्त हृदय स्वामी

केशवानन्द जी भारत की युवा शक्ति के प्रेरणा पुंज के रूप में आज भी चिर स्मरणीय हैं। 1972 में उनका दिल्ली में गोलोक वास हो गया पर महान पुरुषों के कृत्य कदापि नहीं मरते। वे युग युगों तक अमर रहते हैं, हमें प्रेरणा देते हैं।

कर्मयोगी शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द इतिहास के अमर हस्ताक्षर हैं— जिन्होंने सर्व हित का संकल्प लेकर जीवन बिताया। वे पूरे साठ वर्ष तक बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय करते रहे। उन्होंने मरुधरा के चिर सुषुप्त क्षेत्र में जन जागरण करने, वैचारिक क्रांति लाने तथा सामाजिक उत्थान का महान कार्य किया है। निस्सन्देह युगों तक उनका यह सृजन कायम रहेगा, पीढ़ियां पढ़ती रहेंगी, आगे बढ़ती रहेंगी कहती रहेंगी—

नमो केशवानन्द।

रामदेव
48, प्रयाग पोलो, पावटा
जोधपुर (राज०)

---

● यह लेख श्री रामदेव चौधरी की रेडियो वार्ता है, जोधपुर से 31-3 87 को प्रसारित हुई थी।